मुद्रक
जीवणजी डाह्याभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद — १४
प्रकाशक
मगनभाई प्रभुदास देसाई
गूजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद - १४

पहली बार, प्रति १२००

प्रकाशकका निवेदन

यह सग्रह जीते-जागते लेखोका सग्रह है। इसका सवध मनुष्य-जीवनकी आये दिनकी समस्याओसे है। पाठकोको इस सग्रहमे चलती और मुहावरेदार हिन्दी पढनेको मिलेगी।

निवध, जीवनी, एकाकी, कहानी, आलोचना वगैरा साहित्यके भिन्न-भिन्न अगोको इस सग्रहमे लिया गया है। हिन्दीके मशहूर लेखकोके अलावा गुजराती और मराठी-भाषी लेखको और विचारकोके लेख भी इस सग्रहमे है। अ-हिन्दी-भाषी लेखकोकी शैली हिन्दीको विधानके अनुसार सर्वग्राही भाषा वनानेमें मदद करेगी।

यह सग्रह 'हिन्दी सेवक' की परीक्षाके लिए सोचकर तैयार किया गया है। मगर इसके लेखो और इसकी शैलीको देखते हुए यह सामान्य वाचकोके लिए भी उपयोगी होगा, और कॉलेजोंमे हिन्दी अभ्यासके लिए भी काम आ सकेगा।

जिन लेखकोकी कृतियाँ इसमे ली गई है उनके, और हिन्दीप्रेमी भाइयोके, कि जिन्होने इस सग्रहके तैयार करनेमे मदद की है, हम आभारी है।

गूजरात विद्यापीठ,
अहमदावाद — १४
ता० २६–९–'५५

मगनभाई देसाई

अनुक्रमणिका

बुद्धि बनाम श्रद्धा

[गाधीजी]

[आपका पूरा नाम मोहनदास करमचन्द गाधी है। आपका जन्म पोरबन्दर, सौराष्ट्रमे सन् १८६९ और मृत्यु सन् १९४८ मे हुई। देशमे कौन ऐसा होगा जो आपको न जानता हो! आधुनिक भारतके आप जनक कहे जाते है। आपने देशकी प्रत्येक समस्या पर विचार प्रकट किये है। राष्ट्रभाषाकी जरूरतको समझनेवाले और उसके प्रचारके लिए तत्परतासे काम करनेवाले आप पहले व्यक्ति थे।

आप रूढ अर्थमे लेखक न थे। जैसे जैसे जरूरत पडती थी आप अपने विचार 'यग अिंडिया' और 'नवजीवन' के द्वारा व्यक्त किया करते थे; 'नवजीवन' के बन्द हो जाने पर 'हरिजन', 'हरिजनबधु' और 'हरिजन-सेवक' के द्वारा। राष्ट्रभाषाके विकासके लिए आप हिन्दीमे भी लिखते थे।

'बुद्धि बनाम श्रद्धा' लेख आपने 'हिन्दी नवजीवन' मे हिन्दीमें लिखा है।]

मूर्तिपूजा शीर्षक लेखमें मैंने लिखा था कि जहाँ बुद्धि निरुपाय हो जाती है, वहाँ श्रद्धाका आरभ होता है। इस परसे कई पाठकोको यह शक हुआ है कि यदि श्रद्धा बुद्धिसे परे है तो वह अधी ही होनी चाहिये। मेरा मत इससे उलटा है। जो श्रद्धा अधी है वह श्रद्धा ही नही है। अगर कोई मनुष्य श्रद्धापूर्वक यह कहे कि आकाशमे पुष्प होते है, तो उसकी बात उचित नही मानी जा सकती। करोडो मनुष्योका प्रत्यक्ष अनुभव इससे उलटा है। आकाश-कुसुमको मानना श्रद्धा नही बल्कि घोर अज्ञान है। क्योकि आकाशमें पुष्प है या नही, यह बात बुद्धिगम्य है और बुद्धि द्वारा इसका 'नास्तित्व' सिद्ध हो सकता है। इसके विपरीत जब हम यो कहते है कि ईश्वर है, तब हमारे कथनके 'नास्तित्व' को कोई सिद्ध नही कर सकता। बुद्धिवादसे ईश्वरके अस्तित्वको असिद्ध करनेका कोई भले कितना ही प्रयत्न क्यो न करे, हरेक मनुष्यके दिलमे इस विषयकी शका तो फिर भी बनी ही रहेगी। उधर करोडोका अनुभव ईश्वरका अस्तित्व सिद्ध करता है। किसी भी मामलेमें श्रद्धाकी पुष्टिमे अनुभूत ज्ञानका होना आवश्यक है, क्योकि आखिर श्रद्धा तो

अनुभव पर अवलबित है, और जिसे श्रद्धा है उसे कभी न कभी अनुभव होगा ही। परतु श्रद्धावान कभी अनुभवकी आकाक्षा नही करता, क्योकि श्रद्धामे शकाको स्थान नही है। इसका यह अर्थ नही कि श्रद्धामय मनुष्य जडरूप है या जड बन जाता है। जिसमे शुद्ध श्रद्धा है उसकी बुद्धि तेजस्वी रहती है। वह स्वय अपनी बुद्धिसे जान लेता है कि जो वस्तु बुद्धिसे भी अधिक है—परे है—वह श्रद्धा है। जहाँ बुद्धि नही पहुँचती वहाँ श्रद्धा पहुँच जाती है। बुद्धिकी उत्पत्तिका स्थान मस्तिष्क है, श्रद्धाका हृदय। और यह तो जगतका अविच्छिन्न अनुभव है कि बुद्धिबलसे हृदयबल सहस्रगुना अधिक है। श्रद्धासे जहाज चलते है, श्रद्धासे मनुष्य पुरुषार्थ करता है, श्रद्धासे वह पहाडो, अचलोको चला सकता है। श्रद्धावानको कोई परास्त नही कर सकता। बुद्धिमानको हमेशा पराजयका डर रहता है। बालक प्रह्लादमे बुद्धिकी न्यूनता हो सकती थी, मगर उसकी श्रद्धा मेरुके समान अचल थी। श्रद्धामे विवादको स्थान नही। इसलिए एककी श्रद्धा दूसरेके काम नही आ सकती। एक मनुष्य श्रद्धासे दरिया पार हो जायगा, मगर दूसरा, जो अन्धानुकरण करेगा, अवश्य डूबेगा। इसी कारण भगवान् कृष्णने गीताके १६ वे अध्यायमे कहा है—यो यच्छ्रद्ध स एव स —जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही वह बनता है।

तुलसीदासजीकी श्रद्धा अलौकिक थी। उनकी श्रद्धाने हिन्दू समाजको रामायणके समान ग्रथरत्न भेट किया है। रामायण विद्वत्तासे पूर्ण ग्रथ है, किन्तु उसकी भक्तिके प्रभावके मुकाबले उसकी विद्वत्ताका कोई महत्व नही रहता। श्रद्धा और बुद्धिके क्षेत्र भिन्न भिन्न है। श्रद्धासे अतर्ज्ञान, आत्मज्ञानकी वृद्धि होती है, इसलिए अत शुद्धि तो होती ही है। बुद्धिसे बाह्य ज्ञानकी सृष्टिके ज्ञानकी वृद्धि होती है, परतु उसका अत शुद्धिके साथ कार्य-कारणके जैसा कोई सबध नही रहता। अत्यत बुद्धिशाली लोग अत्यत चारित्र्यभ्रष्ट भी पाये जाते है। मगर श्रद्धाके साथ चारित्र्य-शून्यताका होना असभव है। इस परसे पाठक समझ सकते है कि एक बालक श्रद्धाकी पराकाष्ठा तक पहुंच सकता है और फिर भी उसकी बुद्धि मर्यादित रह सकती है। मनुष्य यह श्रद्धा कैसे प्राप्त करे इसका उत्तर गीतामे है, रामचरितमानसमे है। भक्तिसे, सत्सगसे श्रद्धा प्राप्त होती है। जिन्हे-जिन्हे सत्सगका प्रसाद प्राप्त हुआ है, उन्होने—

'सत्सगति कथय किं न करोति पुसाम्?'

वचनामृतका अनुभव किया होगा।

(हिन्दी नवजीवन, ता० १८–९–'२९)

२

तूफ़ान और कसौटी

[गाधीजी]

(१)

परिवारके साथ यह मेरी प्रथम जल-यात्रा थी। मैंने कई बार लिखा है कि हिन्दू-ससारमे विवाह बचपनमे हो जानेसे, तथा मध्यमवर्गके लोगोमे पतिके बहुतागमे साक्षर और पत्नीके निरक्षर होनेके कारण, पति-पत्नीके जीवनमे अन्तर रहता है, और पतिको पत्नीका शिक्षक बनना पडता है। मुझे अपनी धर्म-पत्नीके तथा बालकोके लिबास पर, खान-पान पर, तथा बोल-चाल पर ध्यान रखनेकी आवश्यकता थी। मुझे उन्हे रहन-सहन और रीति-नीति सिखानी थी। उस समयकी कितनी ही बाते याद करके मुझे अब हँसी आ जाती है। हिन्दू पत्नी पति-परायणताको अपने धर्मकी पराकाष्ठा समझती है। हिन्दू पति अपनेको पत्नीका ईश्वर मानता है। इस कारण पत्नीको जैसा वह नचावे नाचना पडता है।

मै जिस समयकी बात लिख रहा हूँ उस समय मैं मानता था कि सुधरा हुआ समझा जानेके लिए हमारा बाह्याचार जहाँ तक हो यूरोपियनोंसे मिलता-जुलता होना चाहिए। ऐसा करने ही से रोब पडता है और रोब पडे बिना देश-सेवा नही हो सकती।

इस कारण पत्नीका तथा बालकोका पहनावा मैंने ही पसद किया। बालको इत्यादिको लोग कहे कि काठियावाडके बनिये है तो यह कैसे सुहा सकता था? पारसी अधिकसे अधिक सुधरे हुए माने जाते है। इस कारण जहाँ यूरोपियन पोशाकका अनुकरण करना ठीक न मालूम हुआ तहाँ पारसीका किया। पत्नीके लिए पारसी तर्जकी साडियाँ ली। बच्चोके लिए कोट-पतलून लिये। सबके लिए बूट-मोजे तो अवश्य चाहिये। पत्नीको तथा बच्चोको दोनो चीजे कई महीनो तक पसन्द न हुई। बूट काटते, मोज़े बदबू देते, पैर तग रहते। इन अडचनोका उत्तर मेरे पास तैयार था। और उत्तरके औचित्यकी अपेक्षा हुक्मका बल तो अधिक था ही। इसलिए लाचार होकर पत्नी तथा बच्चोने पोशाक-परिवर्तनको स्वीकार किया। उतनी ही बेबसी और उससे भी अधिक अनमने होकर भोजनके समय छुरी-काँटेका इस्तेमाल करने लगे। जब मेरा मोह उतरा तब फिर उन्हे बूट-मोजे, छुरी-काँटे इत्यादि

छोडने पडे। यह परिवर्तन जिस प्रकार दु:खदायी था उस प्रकार एक वार आदत पड जानेके वाद फिर उनको छोडना भी दु:खकर था। पर अव मै देखता हूँ कि हम सव सुधारोकी केचलीको छोडकर हलके हो गये है।

इसी जहाजमे दूसरे सगे-सवधी तथा परिचित लोग थे। उनके तथा डेकके दूसरे यात्रियोके भी परिचयमे मै खूव आता। एक तो मुवक्किल और फिर मित्रका जहाज घरके जैसा मालूम होता और मै हर जगह जहाँ जी चाहता जा सकता था।

जहाज दूसरे वन्दरो पर ठहरे विना ही नेटाल पहुँचनेवाला था। इसलिए सिर्फ १८ दिनकी यात्रा थी। मानो हमारे पहुँचते ही, भारी तूफानकी चेतावनी देनेके लिए, हमारे पहुँचनेके तीन-चार दिन पहले, समुद्रमे भारी तूफान उठा, इस दक्षिण प्रदेशमे दिसम्वर मास गरमी और वरसातका समय होता है। इस कारण दक्षिण समुद्रमे इन दिनो छोटे-वडे तूफान अक्सर उठा करते है। तूफान इतने जोरका था और इतने दिनो तक रहा कि मुसाफिर घवरा गये।

यह दृश्य भव्य था। दु:खमे सव एक हो गये। भेद-भाव भूल गये। ईश्वरको सच्चे हृदयसे स्मरण करने लगे। हिन्दू-मुसलमान सव साथ मिलकर ईश्वरको याद करने लगे। कितनोने मानताये मानी। कप्तान भी यात्रियोमे आकर आश्वासन देने लगा कि यद्यपि तूफान जोरका है, फिर भी इससे वडे-वडे तूफानोका अनुभव मुझे है। जहाज यदि मजवूत हो तो एकाएक डूवता नही। इस तरह उसने मुसाफिरोको बहुत समझाया, पर उन्हे किसी तरह तसल्ली न होती थी। जहाजमे आवाजे ऐसी-ऐसी निकलती, मानो जहाज अभी कही न कहींसे टूटा हो—अभी कही छेद हुआ हो। झोले इतने खाता कि जान पडता, अभी उलट जायगा। डेक पर तो खडा रहना ही मुश्किल था। 'ईश्वर जो करे सो सही,' इसके सिवा दूसरी वात किसीके मुंहसे न निकलती।

मुझे जहाँ तक याद है, ऐसी चिन्तामे चौवीस घण्टे वीते होगे। अन्तको वादल विखरे, सूर्यनारायणने दर्शन दिये। कप्तानने कहा—'अव तूफान जाता रहा।'

लोगोके चेहरोसे चिन्ता दूर हुई, और उसके साथ ही ईश्वर भी चला गया। मौतका डर दूर हुआ और उसके साथ ही फिर गान-तान, खान-पान शुरू हो गया, फिर मायाका आवरण चढा। नमाज पढी जाती, भजन होते; परतु तूफानके अवसर पर उसमे जो गभीरता दिखाई देती थी, वह न रही।

परतु इस तूफानकी बदौलत मै यात्रियोमे हिल-मिल गया था। यह कह सकते है कि मुझे तूफानका भय न था अथवा कमसे कम था। प्रायः इसी तरहके तूफान मै पहले देख चुका था। जहाजमे मेरा जी नही मिचलाता, चक्कर नही आते, इसलिए मुसाफिरोमे मै निर्भय होकर घूम-फिर सकता था। उन्हे आश्वासन दे सकता था। और कप्तानके सदेश उन तक पहुँचाता था। यह स्नेह-गाँठ मुझे बहुत उपयोगी साबित हुई।

हमने १८ या १९ दिसम्बरको डरबनके बदर पर लगर डाला। 'नादरी' भी उसी दिन पहुँचा।

पर सच्चे तूफानका अनुभव तो अभी होना बाकी ही था।

(२)

अठारह दिसम्बरके आसपास दोनो जहाजोने लगर डाला। दक्षिण अफ्रीकाके बंदरोमे यात्रियोकी पूरी-पूरी डॉक्टरी जाँच होती है। यदि रास्तेमें किसीको कोई सक्रामक रोग हो गया तो जहाज सूतकमे (क्वारन्टीनमे) रखा जाता है। हमने जब बबई छोडी, तब वहाँ प्लेग फैल रहा था। इसलिए हमे सूतक-बाधा होनेका कुछ तो भय था ही। बदरमे लगर डालनेके बाद जहाज सबसे पहले पीला झण्डा फहराता है। डॉक्टरी जाँचके बाद जब डॉक्टर छुट्टी देता है, तब पीला झण्डा उतरता है, फिर मुसाफिरोके रिश्तेदारोको जहाज पर आनेकी छुट्टी मिलती है।

इसके मुताबिक हमारे जहाज पर भी पीला झण्डा लहरा रहा था। डॉक्टर आये। जाँच करके पाँच दिनके सूतकका हुक्म दिया। क्योकि उनकी यह धारणा थी कि प्लेगके जन्तु २३ दिन तक कायम रहते है। इसलिए उन्होने यह तय किया कि बबई छोडनेके बाद २३ दिन तक सूतकमे रखना चाहिए।

परतु इस सूतकके हुक्मका हेतु केवल आरोग्य न था। डरबनके गोरे हमे फिर वापिस लौटानेकी हलचल मचा रहे थे। इस हुक्ममे वह भी कारणभूत था।

दादा अबदुल्लाकी ओरसे हमे शहरकी इस हलचलकी खबरे मिला करती थी। गोरे एकके बाद एक विराट् सभाये कर रहे थे। दादा अबदुल्लाको धमकियाँ दे रहे थे। उन्हे लालच भी दिलाते थे। यदि दादा अबदुल्ला दोनो जहाजोको वापस लौटा दे तो उन्हे सारा हरजाना देनेको तैयार थे। दादा अबदुल्ला किसीकी धमकियोमे डरनेवाले न थे। इस समय वहाँ सेठ अबदुलकरीम हाजी आदम दूकान पर थे। उन्होने प्रतिज्ञा कर रक्खी थी

कि चाहे जितना नुकसान हो, मैं जहाजको बंदर पर लाकर मुसाफिरोंको उतरवा कर छोड़ूंगा। मुझे वे सविस्तार पत्र हमेशा लिखा करते। तकदीरसे इस बार स्वर्गीय मनसुखलाल हीरालाल नाजिर मुझे मिलने डरबनसे आ पहुँचे थे। वे बड़े चतुर और जवाँमर्द आदमी थे। उन्होंने लोगोंको सलाह दी। उनके वकील मि० लाटन थे। वे भी वैसे ही बहादुर आदमी थे। उन्होंने गोरोंके कामकी खूब निन्दा की, और लोगोंको जो सलाह दी वह केवल वकीलकी हैसियतसे फीस लेनेके लिए नही, बल्कि एक सच्चे मित्रके तौर पर दी थी।

इस तरह डरबनमे द्वंद्व-युद्ध छिड़ा। एक ओर बेचारे मुट्ठीभर भारत-वासी और उनके इने-गिने अंग्रेज मित्र, तथा दूसरी ओर धन-बल, बाहु-बल, अक्षर-बल और संख्या-बलमे भरे-पूरे अंग्रेज। फिर इस बलशाली प्रतिपक्षीके साथ सत्ता-बल भी मिल गया। क्योंकि नेटाल सरकारने खुल्लमखुल्ला उसकी सहायता की। मि० हैरी एस्कम्ब जो प्रधान-मंडलमे थे और उसके कर्ताधर्ता थे, उन्होंने इस मंडलकी सभामे खुले तौर पर भाग लिया था।

इसलिए हमारा सूतक केवल आरोग्यके नियमोंका ही अहसानमंद न था। बात यह थी कि एजंटको अथवा यात्रियोंको किसी न किसी बहाने तंग करके हमें वापस लौटानेकी तजवीज थी। एजंटको तो धमकी दी ही गई थी। अब हमें भी धमकियाँ दी जाने लगी—'यदि तुम लोग वापस न लौटोगे तो समुद्रमे डुबा दिये जाओगे। यदि लौट जाओगे तो शायद लौटनेका किराया भी मिल जायगा।' मैं मुसाफिरोमें खूब घूमा-फिरा और उन्हें धीरज-दिलासा देता रहा। 'नादरी' के यात्रियोंको भी धीरजके संदेश भेजे। मुसाफिर शांत रहे और उन्होंने हिम्मत दिखाई।

मुसाफिरोंके मनोविनोदके लिए जहाजमे तरह-तरहके खेलोंकी व्यवस्था थी। क्रिसमसके दिन आये। कप्तानने उन दिनों पहले दरजेके मुसाफिरोंको भोज दिया। यात्रियोंमें मुख्यत तो मैं और मेरे बाल-बच्चे ही थे। भोजनके बाद व्याख्यानका नम्बर आया। मैंने पश्चिमी सुधारों पर व्याख्यान दिया। मैं जानता था कि यह अवसर गंभीर भाषणके अनुकूल नही। पर मैं दूसरी तरहका भाषण कर ही नही सकता था। विनोद और आमोद-प्रमोदकी बातोंमे मैं शरीक तो होता था, पर मेरा दिल तो डरबनमे छिड़े संग्रामकी ओर लग रहा था।

इस हमलेका मध्यबिन्दु मैं ही था। मुझ पर दो इल्जाम थे—

(१) हिन्दुस्तानमे मैंने नेटालके गोरोंकी अनुचित निन्दा की है, और

(२) मैं नेटालको हिन्दुस्तानियोंसे भर देना चाहता हूँ।

इसलिए 'कुरलैण्ड' और 'नादरी' में खास तौर पर नेटालमें बसानेके लिए हिन्दुस्तानियोंको भर लाया हूँ।

मुझे अपनी जिम्मेदारीका खयाल था। मेरे कारण दादा अबदुल्लाने बड़ी जोखम सिर ले ली थी। मुसाफिरोंकी जान जोखममें थी, मैंने अपने बालबच्चोंको साथ लाकर उन्हें भी दुःखमें डाल दिया था।

फिर भी मैं था सब तरह निर्दोष। मैंने किसीको नेटाल जानेके लिए ललचाया न था। 'नादरी' के यात्रियोंको तो मैं जानता तक न था। 'कुरलैण्ड' में अपने दो-तीन रिश्तेदारोंके अलावा और जो सैंकड़ों मुसाफिर थे, उनके तो नाम-ठाम तक न जानता था। मैंने हिन्दुस्तानमें नेटालके अंग्रेजोंके संबंधमें ऐसा एक भी अक्षर न कहा था, जो नेटालमें न कह चुका था और जो कुछ मैंने कहा था उसके लिए मेरे पास बहुतेरे सबूत थे।

इस कारण उस संस्कृतिके प्रति, जिसकी उपज नेटालके गोरे थे, जिसके वे प्रतिनिधि और हामी थे, मेरे मनमें बड़ा खेद उत्पन्न हुआ। उसीका विचार करता रहता था। और इस कारण उसीके संबंधमें अपने विचार मैंने इस छोटीसी सभामें पेश किये और श्रोताओंने उन्हें सहन भी किया। जिस भावसे मैंने उन्हें पेश किया था उसी भावमें कप्तान इत्यादिने उन्हें ग्रहण किया था। मैं यह नहीं जानता कि उसके कारण उन्होंने अपने जीवनमें कोई परिवर्तन किया था या नहीं, पर इस भाषणके बाद कप्तान तथा दूसरे अधिकारियोंके साथ पश्चिमी संस्कृतिके संबंधमें मेरी बहुतेरी बातें हुईं। पश्चिमी संस्कृतिको मैंने प्रधानतः हिंसक बताया, पूर्वकी संस्कृतिको अहिंसक। प्रश्नकर्ताओंने मेरे सिद्धान्त मुझी पर घटाये। शायद, बहुत करके, कप्तानने पूछा —

'गोरे लोग जैसी धमकियाँ दे रहे हैं उसीके अनुसार यदि वे आपको हानि पहुँचायें तो आप फिर अपने अहिंसा-सिद्धान्तका पालन किस तरहसे करेंगे?'

मैंने उत्तर दिया — 'मुझे आशा है कि उन्हें माफ कर देनेकी तथा उन पर मुकदमा न चलानेकी हिम्मत और बुद्धि ईश्वर मुझे दे देगा। आज भी मुझे उन पर रोष नहीं है। उनके अज्ञान, उनकी संकुचित दृष्टि पर मुझे अफसोस होता है। पर मैं यह मानता हूँ कि वे शुद्ध भावसे यह मान रहे हैं कि हम जो कुछ कह रहे हैं वह ठीक है, और इसलिए मुझे उन पर रोष करनेका कारण नहीं।'

पूछनेवाला हँसा। शायद उसे मेरी वात पर भरोसा न हुआ।

इस तरह लम्बा थका देनेवाला समय बीतता गया। मूतक बन्द करनेकी मियाद अन्त तक मुकर्रर न हुई। इस विभागके कर्मचारीसे पूछता तो कहता —'यह बात मेरे अखत्यारके बाहर है। सरकार मुझे जब हुक्म देगी तब मैं उतरने दे सकता हूँ।'

अन्तको मुसाफिरोके और मेरे पास आखिरी चेतावनियाँ आई। दोनोंको धमकियाँ दी गई थी कि अपनी जानको खतरेमें समझो। जवाबमें हम दोनोंने लिखा कि नेटालके बन्दरमें उतरनेका हमें हक हासिल है, और, चाहे जैसा खतरा क्यों न हो, हम अपने हक पर कायम रहना चाहते हैं।

अन्तको तेईसवे दिन अर्थात् १३ जनवरीको जहाजको इजाजत मिली और मुसाफिरोको उतरनेकी आज्ञा मिल गई।

(३)

जहाज धक्के पर आया। मुसाफिर उतरे, परतु मेरे लिए मि० एस्कम्बने कप्तानसे कहला दिया था कि गाधीको तथा उनके बाल-बच्चोको शामको उतारिएगा। गोरे उनके खिलाफ बहुत उभडे हुए हैं, और उनकी जान खतरेमें है। धक्केके सुपरिन्टेन्डेन्ट टैटम उन्हे शामको लिवा ले जायँगे।

कप्तानने मुझे इस सन्देशका समाचार सुनाया। मैंने उसके अनुसार करना स्वीकार किया। परतु इस सन्देशको मिले अभी आध घण्टा भी न हुआ होगा कि मि० लाटन आये और कप्तानसे मिलकर कहा—'यदि मि० गाधी मेरे साथ आना चाहे तो मैं उन्हे अपनी जिम्मेवारी पर ले जाना चाहता हूँ। जहाजके एजटके वकीलकी हैसियतसे मै आपसे कहता हूँ कि मि० गाधीके सबधमे जो सन्देश आपको मिला है उससे आप अपनेको बरी समझे।' इस तरह कप्तानसे वात-चीत करके वे मेरे पास आये और कुछ इस प्रकार कहा—'यदि आपको जिन्दगीका डर न हो तो मैं चाहता हूँ कि श्रीमती गाधी और बच्चे गाडीमे रुस्तमजी सेठके यहाँ चले जायँ और मैं और आप आम रास्तेसे होकर पैदल चले। रातको अँधेरा हो जाने पर चुपके-चुपके शहरमे जाना मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगता। मेरा खयाल है कि आपका बाल तक बाँका नही होगा। अब तो चारो ओर शान्ति है। गोरे सब इधर-उधर बिखर गये हैं। और मेरा तो यही मत है कि आपका इस तरह छिपकर जाना उचित नही।'

मै सहमत हुआ। धर्म-पत्नी और बच्चे रुस्तमजी सेठके यहाँ गाडीमे गये और सही-सलामत जा पहुँचे। मै कप्तानसे बिदा माँग कर मि० लाटनके साथ जहाजसे उतरा। रुस्तमजी सेठका घर लगभग दो मील था।

जैसे ही हम जहाजसे उतरे, कुछ छोकरोने मुझे पहचान लिया और वे 'गाधी, गाधी' चिल्लाने लगे। तत्काल दो-चार आदमी इकट्ठे हो गये और मेरा नाम लेकर जोरसे चिल्लाने लगे। मि० लाटनने देखा कि भीड बढ जायगी, उन्होने रिक्शा मँगाई। मुझे रिक्शामे बैठना कभी अच्छा न मालूम होता था। मुझे उसका अनुभव यह पहली ही बार होनेवाला था। पर छोकरे क्यो बैठने देने लगे? उन्होने रिक्शावालेको धमकाया, और वह भाग खडा हुआ।

हम आगे चले। भीड भी बढती जाती थी। काफी मजमा हो गया। सबसे पहले तो भीडने मुझे मि० लाटनसे अलग कर दिया। फिर ककर और सडे अडे बरसने लगे। किसीने मेरी पगडी भी गिरा दी और मुझे लाते लगनी शुरू हुई।

मुझे गश आ गया। नजदीकके घरके सीखचेको पकडकर मैने सहारा लिया। खडा रहना तो असभव ही था। अब थप्पड भी पडने लगे।

इतने ही मे पुलिस-सुपरिन्टेडेटकी पत्नी, जो मुझे जानती थी, उधर होकर निकली। मुझे देखते ही वह मेरे पास आ खडी हुई, और धूपके न होते हुए भी अपना छाता मुझपर तान दिया। इससे भीड कुछ दबी। अब अगर वे चोट करे तो मिसेज अलेकजाण्डरको बचा कर ही कर सकते थे।

इसी बीच कोई हिन्दुस्तानी, मुझ पर हमला होता हुआ देख, पुलिस-थाने पर दौड गया। सुपरिन्टेडेट अलेकजाण्डरने पुलिसकी एक टुकडी मुझे बचानेके लिए भेजी। वह समय पर आ पहुँची। मेरा रास्ता पुलिस चौकीसे ही होकर गुजरता था। सुपरिन्टेडेटने मुझे थानेमे ठहर जानेको कहा। मैने इनकार कर दिया, कहा—'जब लोग अपनी भूल समझ लेगे तब शात हो जायँगे। मुझे उनकी न्याय-बुद्धि पर विश्वास है।'

पुलिसकी रक्षामे मै सही-सलामत पारसी रुस्तमजीके घर पहुँचा। पीठ पर मुझे चोट पहुँची थी। गहरी खरोच सिर्फ एक ही जगह आई थी। जहाजके डॉक्टर दादी बरजोर वही मौजूद थे। उन्होने मेरी अच्छी तरह सेवा-शुश्रूषा की।

इस तरह जहाँ अन्दर शाति थी, वहाँ बाहरसे गोरोने घरको घेर लिया। शाम हो गई थी। अँधेरा हो गया था। हजारो लोग बाहर किलकारियाँ मार रहे थे और पुकार रहे थे—"गाधीको हमारे हवाले

कर दो।" मौका बेढव देखकर सुपरिन्टेडेट अलेकजाडर वहाँ पहुँच गये थे और भीड़को डरा-धमकाकर नही, वल्कि हँसी-मजाक करते हुए कावूमें रख रहे थे।

फिर भी वे चिन्तामुक्त न थे। उन्होंने मुझे इस आशयका सदेश भेजा—'यदि आप अपने मित्रके जान-मालको, मकानको तथा अपने वाल-वच्चोको वचाना चाहते हो तो मैं जिस तरह वताऊँ आपको छिप कर इस घरसे निकल जाना चाहिए।' एक ही दिन मुझे एक दूसरेसे विपरीत दो काम करनेका समय आया। जव कि जान जानेका भय केवल कल्पित मालूम होता था तव मि० लाटनने मुझे खुले-आम वाहर चलनेकी सलाह दी और मैंने उसे माना। पर जव खतरा आंखोके सामने था, तव दूसरे मित्रने इससे उलटी सलाह दी और उसे मैंने मान लिया। अव कौन वता सकता है कि मै अपनी जानकी जोखमसे डरा, अथवा मित्रके जानमालको या अपने वाल-वच्चोको हानि पहुँचनेके डरसे या तीनोके? कौन निश्चय-पूर्वक कह सकता है कि मेरा जहाजसे हिम्मत दिखाकर उतरना और फिर खतरेसे सामना होने पर छिप कर भाग जाना उचित था? परन्तु जो वाते हो चुकी है उनकी इस तरह चर्चा ही फिजूल है। उसमे कामकी वात सिर्फ इतनी ही है कि जो कुछ हुआ उससे जो नसीहत मिल सकती हो उसे ले ले। किस मौके पर कौन मनुष्य क्या करेगा, यह निर्णय-पूर्वक नही कह सकते। उसी तरह, हम यह भी देख सकते है कि मनुष्यके वाह्याचारसे उसके गुणकी जो परीक्षा होती है वह अधूरी होती है और अनुमान-मात्र होती है।

जो कुछ हो। भागनेकी तैयारीमे मै अपनी चोटोको भूल गया। मैंने हिन्दुस्तानी सिपाहीकी वर्दी पहनी। कही सिर पर चोट न लगे, इस अदेशेसे सिर पर एक पीतलकी तश्तरी रख ली और उस पर मद्रासियोका लवा साफा लपेटा। साथमे दो जासूस थे, जिनमे एकने हिन्दुस्तानी व्यापारीका रूप वनाया था, अथवा मुँह हिन्दुस्तानीकी तरह रँग लिया था। दूसरेने क्या स्वाँग वनाया था, यह मै भूल गया हूँ। हम नजदीककी एक गलीसे होकर पडोसकी एक दूकानमे पहुँचे, और गोदाममे रक्खे वोरोके ढेरोके अँधेरेमे वचते हुए दूकानके दरवाजेमे निकल भीडमे होकर वाहर चले गये। गलीके नुक्कड पर गाडी खडी थी, उसमे वैठ कर हम उसी थानेमे पहुँचे, जहाँ ठहरनेके लिए सुपरिन्टेन्डेन्ट अलेकजाडरने पहले कहा था। मैंने सुपरिन्टेडेन्टका तथा खुफिया पुलिसके अफसरका एहसान माना।

इस तरह एक ओर जब मै दूसरी जगह ले जाया जा रहा था, तब दूसरी ओर सुपरिन्टेडेट भीडको गीत सुना रहा था। उसका हिन्दी-भाव यह है —

'चलो इस गाधीको हम उस इमलीके पेड पर फाँसी लटका दे।'

जब सुपरिन्टेडेटको खबर मिल गई कि मै सही-सलामत मुकाम पर पहुंच गया, तब उन्होंने भीडसे कहा — 'तुम्हारा शिकार तो इस दूकानसे होकर सही-सलामत बाहर सटक गया है।' भीडमे से कुछ लोग बिगडे, कुछ हँसे, बहुतेरोने उनकी बात ही न मानी।

सुपरिन्टेडेटने कहा, 'तो तुममे से कोई जाकर अन्दर देख ले। अगर गाधी वहाँ मिल जाय, तो उसे मैं तुम्हारे हवाले कर दूँगा, न मिले तो तुमको अपने-अपने घर चले जाना चाहिए। मुझे इतना तो विश्वास है कि तुम पारसी रुस्तमजीके मकानको न जलाओगे और न गाधीके बाल-बच्चोको नुकसान पहुँचाओगे।'

भीडने अपने प्रतिनिधि चुने। प्रतिनिधियोने भीडको निराशाजनक समाचार सुनाये। सब सुपरिन्टेडेट अलेकजाडरकी समय-सूचकता और चतुराईकी स्तुति करते हुए, और कुछ लोग मन ही मन कुढते हुए, घर चले गये।

स्वर्गीय मि० चेबरलेनने तार दिया कि गाधी पर हमला करनेवालो पर मुकदमा चलाया जाय और ऐसा किया जाय कि गाधीको इन्साफ मिले। मि० एस्कम्बने मुझे बुलाया। मुझे चोटे पहुँची, इसके लिए दुःख प्रदर्शित किया और कहा — 'आप यह तो अवश्य मानेगे कि आपको जरा-भी कष्ट पहुँचनेसे मुझे खुशी नही हो सकती। मि० लाटनकी सलाह मानकर आपने जो तुरन्त उतर जानेका साहस किया, उसका आपको हक था। पर यदि मेरे सदेशके अनुसार आपने किया होता, तो यह दुःखद घटना न हुई होती। अब यदि आप हमला करनेवालोको पहचान सके, तो मै उन्हे गिरफ्तार करके उन पर मुकदमा चलानेके लिए तैयार हूँ। मि० चेम्बरलेन भी ऐसा ही चाहते है।'

मैने उत्तर दिया — 'मै किसी पर मुकदमा चलाना नही चाहता। हमला करनेवालोमे से एक-दोको मै पहचान भी लूं, तो उन्हे सजा करानेसे मुझे क्या लाभ? फिर मैं तो उन्हे दोषी भी नही मानता हूँ। उन्हे यह कहा गया कि मैने हिन्दुस्तानमे नेटालके गोरोकी भरपेट और बढा-चढा कर निंदा की है। इस बात पर यदि वे विश्वास कर ले और बिगड पडे, तो इसमे आश्चर्यकी कौन बात है? कसूर तो ऊपरके लोगोका, और मुझे कहने दे तो, आपका माना जा सकता है। आप लोगोको ठीक सलाह दे सकते थे।

पर आपने भी रूटरके तार पर विश्वास किया और कल्पना कर ली कि मैंने सचमुच अत्युक्तिसे काम लिया था। मैं किसी पर मुकदमा चलाना नही चाहता। जब असली और सच्ची बात लोगों पर प्रकट हो जायगी और लोग जान जायेंगे तब अपने आप पछतायेंगे।'

'तो आप मुझे यह बात लिखकर दे देंगे? मुझे मि० चेम्बरलेनको इस आशयका तार करना पडेगा। मैं नही चाहता कि आप जल्दीमे कोई बात लिख दे। मि० लाटनसे तथा अपने दूसरे मित्रोंसे सलाह करके जो उचित मालूम हो वही करे। हाँ, यह बात मै मानता हूँ कि यदि आप हमलाइयो पर मुकदमा न चलावेंगे तो सब बातोंको ठण्डा करनेमे मुझे बहुत मदद मिलेगी और आपकी प्रतिष्ठा तो बहुत ही बढ जायगी।'

मैंने उत्तर दिया—'इस सबधमे मेरे विचार निश्चित हो चुके है। यह तय है कि मै किसी पर मुकदमा चलाना नही चाहता। इसलिए मै यहॉका यही आपको लिखे देता हूँ।'

यह कहकर मैंने वह आवश्यक पत्र लिख दिया।

('आत्मकथा'से)

३

हर्षवर्धन और ह्यूएनत्सांग

[प० जवाहरलाल नेहरू]

[आपका जन्म सन् १८८९ मे इलाहाबादमें हुआ। बैरिस्टरी पास करके इग्लैण्डसे वापस आने पर आपने वकालत नही की और देशप्रेमवश आप गाधीजीके साथ आजादीकी लडाईमे शामिल हो गए। जवानीके बहुत कीमती साल आपने जेलमे गुजारे। आप कई बार काग्रेसके प्रमुख रह चुके हैं।

आपको पढने-लिखनेका बहुत शौक है। व्यस्त रहने पर भी इस कामके लिए आप समय निकाल ही लेते है। 'ग्लिपसेज ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री', 'माई स्टोरी' और 'डिस्कवरी ऑफ अिंडिया' आपकी प्रसिद्ध पुस्तके हैं जिनका हिन्दी अनुवाद छप चुका है।]

हूणोंकी हार हो चुकी थी और वे पीछे हटा दिये गये थे। लेकिन बहुतसे हूण इधर उधर कोनोमे बचे रह गये थे। बालादित्यके बाद महान्

गुप्त राज्य-वश खतम हो गया था, और अुत्तर भारतमे बहुतसे राज्य और रियासते कायम हो गई थी। दक्षिणमे पुलकेशिनने चालुक्य-साम्राज्य कायम कर लिया था।

कानपुरसे थोडी दूर कन्नोज नामका छोटा-सा नगर है। कानपुर आजकल एक बडा शहर है। लेकिन वह अपने कारखानो और चिमनियोकी वजहसे बदसूरत हो गया है। कन्नोज एक मामूली जगह है, गाँवसे कुछ ही बडा होगा। लेकिन जिस ज़मानेका जिक्र मै कर रहा हूँ, उस जमानेमे कन्नोज एक बडी राजधानी थी, और अपने कवियो, कलाकारो और दार्शनिकोके लिए मशहूर थी। कानपुर उस समय तक पैदा नही हुआ था और न कई सौ वर्षो बाद तक पैदा होनेवाला था।

कन्नोज नया नाम है। इसका असली नाम कान्यकुब्ज यानी 'कुबडी लडकी' है। कथा है कि किसी प्राचीन ऋषिने काल्पनिक अपमानसे गुस्सेमे आकर एक राजाकी सौ लडकियोको शाप दे दिया था, जिससे वे कुबडी हो गई थी। उस समयसे यह शहर, जहाँ ये लडकियाँ रहती थी, 'कुबडी लडकियोका शहर' यानी कान्यकुब्ज कहलाने लगा।

लेकिन सक्षेपके लिए हम इसको कन्नोज ही कहेगे। हूणोने कन्नोजके राजाको मार डाला और उसकी रानी राज्यश्रीको कैद कर लिया। राज्यश्रीका भाई राजवर्धन अपनी बहनको छुडानेके लिए हूणोसे लडने आया। उसने हूणोको तो हरा दिया, लेकिन धोकेसे खुद मारा गया। इस पर उसका छोटा भाई हर्षवर्धन अपनी बहन राज्यश्रीकी तलाशमे निकला। यह बेचारी किसी तरहसे निकलकर पहाडोमे जा छिपी थी, और अपनी मुसीबतोसे परेशान होकर उसने आत्महत्याका निश्चय कर लिया था। कहते है वह भस्म होने जा रही थी कि हर्षने ढूँढ लिया और उसकी जिन्दगी बचा ली।

अपनी बहनको पाने और बचानेके बाद हर्षने पहला काम यह किया कि उस नीच राजाको, जिसने उसके भाईको धोकेसे मार डाला था, सजा दी। और उसने सिर्फ इस नीच राजाको ही सजा नही दी, बल्कि सारे उत्तर भारतको बगालकी खाडीमे अरबके समुद्र तक, और दक्षिणमे विंध्य पर्वत तक जीत लिया। विंध्याचलके बाद चालुक्य-साम्राज्य था और हर्षको यहाँ रुकना पडा।

हर्षवर्धनने कन्नोजको अपनी राजधानी बनाया। वह खुद कवि और नाटककार था, इससे उसके पास कवि और कलाकार जमा हो गये और कन्नोज एक मशहूर शहर हो गया। हर्ष पक्का बौद्ध था। इस समय बौद्ध

धर्म, एक अलग धर्मकी हैसियतसे, भारतमे बहुत कमजोर पड चुका था। ब्राह्मण इसको हजम करते जा रहे थे। हर्ष भारतका आखिरी महान् बौद्ध सम्राट् हुआ है।

हर्षके राज्य-कालमे हमारा पुराना मित्र ह्यूएनत्साग[1] भारत आया था और उसके यात्रा-वर्णनमे, जो उसने भारतमे लौटकर लिखा था, भारतका और मध्य-एशियाके उन मुल्कोका, जिनसे होकर वह भारत आया था, बहुत कुछ हाल मिलता है। ह्यूएनत्साग एक धर्मपरायण बौद्ध था और वह बौद्ध धर्मके पवित्र स्थानोकी यात्रा करने और इस धर्मकी पुस्तके अपने साथ ले जानेके लिए भारत आया था। यह गोबीके रेगिस्तानको पार करके आया था, और रास्तेमे उसने ताशकन्द, समरकन्द बल्ख खुतन, यारकन्द आदि कई मशहूर स्थानोकी यात्रा की थी। वह सारे भारतमे घूमा और शायद लका भी गया था। उसकी किताब अनेक बातोका एक आश्चर्यजनक और चित्ताकर्षक कबाडखाना है, जिसमे उन देशोका सच्चा दिग्दर्शन है, जहाँ-जहाँ ह्यूएनत्साग गया था, भारतके भिन्न-भिन्न भागोके निवासियोके आश्चर्य-जनक चरित्र-चित्रण है जो आज भी सही मालूम होते है, अद्भुत कहानियाँ है जो ह्यूएनत्सागने यहाँ सुनी थी, और बुद्ध तथा बोधिसत्वोके चमत्कारकी अनेको कथाएँ है। ह्यूएनत्सागकी लिखी उस बड़े अकलमन्द आदमीकी मजेदार कहानी, जो अपने पेटके चारो तरफ ताँबेके पत्तर बाँधे फिरता था, मैं तुम्हे पहले ही बता चुका हूँ। ह्यूएनत्सागने बहुत वर्ष भारतमे बिताये, खासकर नालन्दाके विश्वविद्यालयमे, जो कि पाटलिपुत्रके पास था। कहते है कि नालन्दा विश्वविद्यालयमे, जो मठ भी था, दस हजार विद्यार्थी और भिक्षु रहा करते थे। यह बौद्ध विद्याका बडा केन्द्र था और बनारसका, जो ब्राह्मण विद्याका केन्द्र समझा जाता था, प्रतिद्वद्वी था।

मैंने एक बार तुमसे कहा था कि भारत किसी जमानेमे 'इन्दुदेश' यानी चन्द्रमाका देश कहलाता था। ह्यूएनत्साग भी इस बातका जिक्र करता है और बतलाता है कि यह नाम कितना उपयुक्त है। चीनी भाषामे चन्द्रमा को 'इन-तू' कहते है। इसलिए तुम चाहो तो अपना चीनी नाम भी रख सकती हो![2]

---

१ इसे लोग यूयेन-चैग, युआन-च्वाग या ह्वानत्सागके नामसे भी पुकारते है।

२ इन्दिराका प्यारका नाम 'इन्दु' है। यह लेख इन्दिराको पत्रके रूपमें लिखा गया था।

ह्यूएनत्साग सन् ६२९ ई० मे भारत आया। चीनसे जव इसने अपनी यात्रा शुरू की तो इसकी उम्र २६ सालकी थी। एक पुरानी चीनी पुस्तकमें लिखा है कि ह्यूएनत्साग सुन्दर और लवा था। "उसका रग मनोहर और आँखे चमकदार थी, चालढाल गभीर और शानदार थी और उसके चेहरेसे आकर्षण और तेज वरसता था।. . .उसमे पृथ्वीको चारो ओर घेरनेवाले विशाल समुद्रकी-सी गभीरता थी, और जलमे पैदा होनेवाले कमलके समान शाति और सुषमा थी।"

वौद्ध भिक्षुका केसरिया वाना पहनकर यह अकेला अपनी कठिन यात्रा पर चल पडा, हालाँकि चीनी सम्राट्ने इसे इजाजत नही दी थी। इसने गोवीका रेगिस्तान पार किया और जव यह सव कठिनाइयाँ झेलकर तुरफानके राज्यमे पहुँचा, जो कि इस रेगिस्तानके किनारे पर ही था, तो सिर्फ इसकी जान ही वाकी थी। तुरफानका रेगिस्तानी राज्य सभ्यता और सस्कृतिका छोटा-सा एक अजीव नख़लिस्तान था। आज यह एक वीरान जगह है, जहाँ पुरातत्ववेत्ता और इतिहासवेत्ता पुराने खण्डहरोकी तलाशमे जमीन खोदते फिरते है। लेकिन सातवी सदीमे जव ह्यूएनत्साग यहाँसे गुजरा था, तुरफान एक उच्च सस्कृतिका और जीवनसे भरापूरा देश था। इसकी सस्कृतिमे भारत, चीन, ईरान और कुछ अशोमे योरपकी सस्कृतियोका अजीव मेल पाया जाता था। यहाँ वौद्ध धर्मका प्रचार था और सस्कृतके कारण भारतीयताका प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता था। फिर भी इस देशका रहनसहन ज्यादातर चीन और ईरानसे लिया हुआ था। ख़याल हो सकता है कि यहाँके निवासियोकी भाषा मगोलियन होगी। लेकिन इनकी भाषा मगोलियन न होकर भारतीय–योरपीय थी, और योरपकी केल्टिक भाषाओंसे वहुत कुछ मिलती जुलती थी। सवसे आश्चर्यकी वात तो यह है कि यहाँ पत्थरकी दीवारो पर जो चित्र है उनकी आकृतियाँ योरपीय ढाँचेकी है। पत्थर पर वने हुए वुद्ध और वोधिसत्व, देवियो और देवताओके ये चित्र वडे सुन्दर है। देवियोकी मूर्तियाँ या तो भारतीय पोशाकमें है, या उनके मुकुट और पोशाक युनानी है। फ्रासके कलामर्मज्ञ एम० ग्राउजे का कहना है कि, "इन चित्रोमे हिन्दू सुकुमारता, युनानी भावव्यजकता और चीनी कमनीयताका वहुत ही सुन्दर मेल पाया जाता है।"

तुरफान अव भी है और तुम इसे नकशेमे देख सकती हो। लेकिन अव यह कोई महत्वकी जगह नहीं है। कितने ताज्जुवकी वात है कि इतने दिन

पहले सातवी सदीमे सस्कृतिकी भरपूर धारायें दूर-दूरके देशोसे आकर इस जगह मिली, और मिलकर इनका सामजस्यपूर्ण नया रूप बन गया!

तुरफानसे ह्यूएनत्साग कूचा गया। यह उस जमानेमे मध्य-एशियाका एक दूसरा मशहूर केन्द्र था। इसकी सभ्यता शानदार चमक-दमकवाली थी। और यहाँके गायक तथा यहाँकी स्त्रियोकी सुन्दरता खास तौर पर मशहूर थी। इस देशका धर्म और कला भारतकी थी। ईरानने इसे सस्कृति और व्यापारी माल दिया था और इसकी भाषा सस्कृत, पुरानी फारसी, लैटिन और केल्टिकसे मिलती जुलती थी। यह भी एक चित्ताकर्षक मिश्रण था।

इसके बाद वह तुर्कोंके मुल्कसे होकर गुजरा जहाँका राजा 'महान खान' जो बौद्ध था, मध्य-एशियाके ज्यादातर हिस्से पर राज्य करता था। इसके बाद वह समरकद पहुँचा, जो उस समय भी एक पुराना शहर माना जाता था और जिसके साथ सिकन्दरकी यादगार जुडी हुई थी, क्योंकि करीब एक हजार वर्ष पहले सिकन्दर यहाँसे होकर गुजरा था। फिर वह बलख गया और वहाँसे काबुल नदीकी घाटी पारकर कश्मीर होता हुआ भारतमे आया।

वह जमाना चीनमे ताग राजवशके शुरूका था, जब चीनकी राजधानी सी-आन-फू कला और विद्याका केन्द्र थी और सभ्यतामे चीन दुनियाके सब देशोसे आगे था। इसलिए तुम्हे याद रखना चाहिये कि ह्यएनत्साग बहुत ऊँची सभ्यताके इस देशसे आया था, और तुलना करनेमे उसका आदर्श काफी ऊँचा रहा होगा। इसीलिए भारतकी हालतके बारेमे उसका बयान बहुत महत्त्वपूर्ण और कीमती है। उसने भारतवासियोकी और उनके शासनकी बहुत तारीफ की है। वह कहता है—

"हालाँकि भारतके साधारण लोग स्वभावसे बेपरवाह होते है, फिर भी वे ईमानदार और इज्जतवाले है। रुपये पैसेके बारेमे इनमे कोई मक्कारी नही पाई जाती और इन्साफ करनेमे ये दयाशील होते है। आचरणमे न उनमे धोखेबाजी हे, न विश्वासघात, और ये लोग अपनी बातोके और वादोके पक्के है। शासनके नियमोमे इनका सिद्धातो पर आग्रह एक विशेषता रखता है और इनके व्यवहारमे बहुत सज्जनता और मिठास है। अपराधियो और बागियोकी तादाद यहाँ बहुत ही कम है और उनके कारण कभी-कभी ही परेशानी उठानी पडती है।"

वह आगे लिखता है—"चूँकि सरकारी शासनका आधार उदार सिद्धातो पर है, इसलिए शासन-विभाग पेचीदा नही है।..... लोगोसे

बेगार नही ली जा सकती।" "इस तरह लोगो पर करोका बोझ बहुत हलका है और उनसे मामूली काम लिया जाता है। हरेक आदमी अपनी सासारिक सपत्तिका शातिपूर्वक उपयोग करता है, और सभी लोग अपनी रोजीके लिए हल चलाते हैं। जो लोग सरकारी जमीनमे खेती करते हैं, उन्हे उपजका छठा हिस्सा लगानमे देना पडता है। धधा करनेवाले व्यापारी अपने कामके लिए आजादीसे इधर-उधर आ जा सकते हैं।"

ह्यूएनत्सागने देखा कि जनताके लिए शिक्षाकी व्यवस्था अच्छी थी और बच्चोकी शिक्षा जल्दी शुरू कर दी जाती थी। पहली किताब खत्म करनेके बाद लडके या लडकीको सात वर्षकी उम्रमे ही पाँचो शास्त्रोकी पढाई शुरू कर दी जाती थी। आजकल शास्त्रका मतलब सिर्फ धर्मपुस्तक समझा जाता है। लेकिन उस समय शास्त्रका मतलब सब तरहका ज्ञान था। पॉच शास्त्र ये थे — (१) व्याकरण (२) कलाकौशलका विज्ञान (३) आयुर्वेद (४) न्याय और (५) दर्शन। इन विषयोकी शिक्षा विश्वविद्यालयोमे होती थी, और साधारण तौर पर तीस सालकी उम्रमे पूरी हो जाती थी। मेरा खयाल है कि बहुत लोग इस उम्र तक न पढ सकते होगे। लेकिन यह मालूम होता है कि प्रारभिक शिक्षा काफी फैली हुई थी, क्योकि सारे पुरोहित और साधु शिक्षक हुआ करते थे और अिनकी कोई भी कमी नही थी। ह्यूएनत्साग पर भारतवासियोके विद्याप्रेमका बहुत असर पडा था। अपनी सारी किताबमे वह इस बातका जिक्र करता है।

उसने प्रयागके बडे कुभमेलेका भी जिक्र किया है। जब तुम इस मेलेको कभी फिर देखो तो तेरहसौ वर्ष पहलेकी ह्यूएनत्सागकी इस यात्राका खयाल करना और यह सोचना कि उस समय भी यह मेला बहुत प्राचीन था और ठेठ वैदिक कालसे चला आ रहा था। इस प्राचीन परपराके मेलेके मुकाबिलेमे हमारा शहर इलाहाबाद अभी कलका शहर है। इस शहरको ४०० वर्षसे कम हुए। अकबरने बसाया था। प्रयाग इससे ज्यादा पुराना है। लेकिन प्रयागसे भी पुराना वह आकर्षण है जो हजारो वर्षोसे लाखो यात्रियोको हर वर्ष गगा और जमुनाके सगम पर खीच लाता है।

ह्यूएनत्साग लिखता है कि बौद्ध होते हुए भी हर्ष इस शुद्ध हिन्दू मेलेमे जाया करता था। उसकी तरफसे एक शाही आज्ञापत्र जारी किया जाता था, जिसमे पचहिदके सब गरीबो और मुहताजोको मेलेमे आकर उसका मेहमान होनेके लिए निमत्रित किया जाता था। किसी सम्राट्के लिए भी इस तरहका निमत्रण देना बडे हौसलेका काम था। कहनेकी जरूरत

नही कि वहुत-से आदमी आते थे और रोज करीव एक लाख आदमी हर्षके यहाँ भोजन करते थे। इस मेलेमे हर पाँचवे वर्ष हर्ष अपने खजानेकी सारी वचत, सोना, जेवर, रेशम वगैरा जो कुछ उसके पास होता था, सव वाँट देता था। एक वार उसने अपना राज-मुकुट और कीमती पोशाक भी दे डाली थी और अपनी वहन राज्यश्रीसे, एक पुराना मामूली कपडा, जो पहले पहना जा चुका था, लेकर पहना था।

श्रद्धालु बौद्ध होनेके कारण हर्षने खानेके लिए जानवरोका मारा जाना वन्द कर दिया था। ब्राह्मणोने इस पर शायद एतराज नही किया, क्योकि वुद्धके वादसे ये लोग अधिकाधिक निरामिषभोजी हो गये थे।

ह्यूएनत्सागकी कितावमे एक वडी मजेदार वात है, जो शायद तुम्हे दिलचस्प मालूम हो। वह लिखता है कि भारतमे जव कोई आदमी वीमार पडता था, तो वह तुरत सात दिनका लंघन कर डालता था। वहुत लोग तो लघनके दौरानमे ही अच्छे हो जाते, लेकिन अगर वीमारी फिर भी कायम रहती तो दवा लेते थे। उस जमानेमे वीमार पडना अच्छी वात नही समझी जाती रही होगी, और न डॉक्टर लोगोकी ही ज्यादा मॉग रही होगी।

उस जमानेमे भारतमे एक मार्केकी वात यह थी कि शासक और सेनाधिकारी विद्वानो और शीलवानोकी वहुत इज्जत करते थे। भारतमे और चीनमे इस वातकी जानवूझकर कोशिश की गई, और इसमे खूव सफलता भी हुई कि विद्या और संस्कृतिको इज्जतकी जगह मिले, पाशविक बल या धन-दौलतको नही।

भारतमे वहुत वर्ष वितानेके वाद ह्यूएनत्साग फिर उत्तरी पहाडोको पार करता हुआ अपने देश लौट गया। सिंघ नदीमे यह डूवते-डूवते वचा और इसके साथकी वहुत-सी कीमती किताबे वह गईं। फिर भी यह हाथसे लिखी वहुत-सी किताबे अपने साथ ले गया और वहुत सालो तक इन किताबोका चीनी भाषामे अनुवाद करनेमे लगा रहा। ताग सम्राट्ने सी-आन-फूमे उसका वडे प्रेमसे स्वागत किया और इसी सम्राट्के कहने पर इसने अपनी यात्राका हाल लिखा था।

इसने तुर्कोका भी हाल लिखा है जिन्हे इसने मध्य-एशियामे देखा था। यह वह नई जाति थी, जो आगे चलकर पश्चिमकी तरफ वढकर वहुत-सी सल्तनतोको उलट पुलट करनेवाली थी। इसने यह भी लिखा है

कि सारे मध्य-एशियामे बौद्ध विहार पाये जाते थे। सच तो यह है कि बौद्ध विहार ईराक, ईरान, खुरासन, मोसल और ठेठ सीरियाकी सरहद तक फैले हुए थे। ईरानियोके बारेमे ह्यूएनत्साग लिखता है—"ईरानी लोग विद्या पढनेकी परवाह नही करते, बल्कि अपना सारा वक्त कलाकी चीजे बनानेमे लगाते है। जो चीजे ये बनाते है, आस-पासके मुल्क उनकी बडी कद्र करते है।"

उस जमानेके यात्री अद्‌भुत होते थे। आजकलके अफरीकाके मुल्कोके अदरकी यात्रा या उत्तरी अथवा दक्षिणी ध्रुवकी यात्राएँ तक भी पुराने जमानेकी इन महान् यात्राओके मुकाबलेमे तुच्छ नजर आती है। पहाडों और रेगिस्तानोको पार करते हुए और वर्षो अपने मित्रो और परिवारसे बिछुडे हुए ये लोग मजिल-दर-मजिल आगे बढते जाते थे। शायद कभी-कभी इन्हे अपने घरकी याद भी आती थी। लेकिन उनमे इतना आत्मगौरव था कि इस बातको जबान पर नही लाते थे। फिर भी एक यात्रीने अपने मनकी हल्कीसी झलक हमे दी है। उसने लिखा है कि जब वह एक दूर देशमे खडा था, उसे अपने घरकी याद आई और वह व्याकुल हो गया। इस यात्रीका नाम सुगयुन था और वह भारतमे ह्यूएनत्सागसे सौ वर्ष पहले आया था। वह गाधारके पहाडी देशमे था, जो भारतके उत्तर पश्चिममें है। वह लिखता है कि "शीतल मद समीर, चिडियोके गीत, वसत ऋतुके सौंदर्यमे सजे हुए पेड, अनेक फूलो पर फुदकती हुई तितलियाँ—एक दूर देशमे इस मनोहर दृश्यको देखकर उसके मनमे घरकी याद लौट आई और इन विचारोने उसे इतना उदास कर दिया कि वह बुरी तरह बीमार पड गया।"

(सस्ता साहित्य मडलके सौजन्यसे 'विश्व इतिहासकी झलकसे' उद्धृत)

४

सुखकी राह

[श्री भगवानदीन]

[आप पुराने देशभक्त और सामाजिक कार्यकर्ता है। लोगोने आपके त्याग और उच्च विचारोको देखकर आपको महात्मा बना दिया। आपके लेख 'नया हिन्द' मे अक्सर छपते रहते है। पहले आप इसके सपादक थे, और आज-कल इसके सपादक मडलमे है। आपके लेखोका एक सग्रह 'जवानो' छपा है और यह लेख उसी सग्रहमे से हैं। आप उत्तर प्रदेशके रहनेवाले है।]

आइए, पहले यह समझ ले कि सुख है क्या? लेकिन यह क्या कोई समझनेकी चीज है? सुख भले ही सैंकडो तरहका हो, पर मै तो तभी अपनेको सुखी मानूंगा, जब मुझको वह सुख मिले जिसे मै चाहता हूँ। मै प्यासा हूँ, मुझे पानी पिलाकर ही आप सुख पहुँचा सकते है, न रजाई उढाकर और न धर्मका उपदेश सुनाकर। ठीक बिलकुल ठीक! प्यासा पानी पीकर ही सुखी होगा, पर न एक घूंट पानी उसे सुखी कर सकता है और न एक घडा। उसे एक गिलास ही पानी सुखी कर सकता है। पर क्या मै आपसे यह पूछूँ कि अगर आप भी प्यासे हो और आपका कोई बहुत प्यारा भी, और पानी हो सिर्फ एक गिलास तब आपका सुख किसमे होगा? तब! तब मेरा सुख होगा, उस प्यासेको—अपने प्यारेको पानी पिला देनेमे और खुद प्यासे मर जानेमें। अगर यह बात है, तो आपको सुखका मतलब सम-झानेकी जरूरत नही। सुखको सब समझते है और खूब समझते है। ठीक समझतें है। सुख एक ही किस्मका है और वह है उसके मनकी भावनामे। फिर दुनिया दुखी क्यो? अपने अन्दरके सुखको क्यो नही पा लेती? बात असलमे यह है कि उस अदरकी चीजको पानेको भी चाहिए हिम्मत। हिम्मती ही सुखी है। हिम्मतका ही नाम सुख है। सीतामे हिम्मत थी, चल दी पतिके साथ जगल। जगलमे नगे पाँव चलकर पडे छाले दुख देते होगे देखनेवालोको, या आज रामायण सुननेवाले भक्तोको, पर वह सीताको दुख नही देते थे। दुखी थी कम-हिम्मत उर्मिला, जो रिवाजोकी दासी बनी रही और महलोके दुख-सुख भोगती रही। क्यो न चल दी पतिके साथ? उसके लिए मैथिलीशरण गुप्त आँसू बहाकर उर्मिलाशरण भले ही बन जाएँ,

वाल्मीकि और तुलसीदास उसे दुनियाके सामने लानेकी हिम्मत नही कर सकते। उन्होंने हिम्मती जानकीको आदर्श मानकर जानकीशरण बने रहने मे ही अपना और औरोका भला समझा। जानकी सुखी थी और आजीवन सुखी रही। सुखी होनेके लिए इस सुखी सीताको नमूना समझकर रूढियोंके काँटोको कुचलते, पाँवोमे छाले डालते आगे बढते चले जानेकी जरूरत है।

"पराधीन सपनेहु सुख नाही"

यह सूत्र उसके मुँहसे निकला मालूम होता है, जो देश-फरोशी, दिमाग-फरोशी, आत्मा-फरोशी करके दुश्मनके हलवे-मॉडे पर पलकर मोटा-ताजा हो जाता है और चैन नही पाता तथा सुख जिससे हरघडी दूर होता जाता है। वह हिम्मत कर पीले और सफेद ठीकरो पर लात मारता है तथा खुली हवामे दम लेकर, परिन्देकी तरह चहचहा उठता है —

"पराधीन सपनेहु सुख नाही,
निजाधीन दुख सुख बन जाही।"

भगवान् कृष्णने और अर्जुनके साथ किया ही क्या था? उसकी सोई हुई हिम्मत जगाई थी। वह दुविधामे था, दुविधा ही दुख है। दुविधा हिम्मतकी कमीका दूसरा नाम है। दुविधा यही तो है न? रूढियो-रिवाजोका गुलाम बनकर चला जाय या अन्तरात्मा जमीरकी हुक्मबरदारी की जाय? अर्जुनने तो यही सोचा था, "लोग क्या कहेगे?" इसकी परवाह करूँ या "मेरा भगवान् क्या कहेगा" इसकी? उसका भगवान् कौन? उसके मनमें बैठा राम, वही राम तो कृष्ण है, वही राम सात-सौ श्लोकोकी गीता मैदाने-जगमे कुछ सेकडोमे सुनाकर अर्जुनकी कमान पर तीर चढानेवाला हम सबके मनमे बैठा है। "बस जरा गरदन झुकाओ, देख लो।"

और हमारे प्यारे नबी, मुहम्मदने क्या किया? ईरान, रोम और ईथोपियाके गुलाम अरबोमे हिम्मत फूँक दी। काबेके तीन-सौ-साठ बुत काबेमे ही थे, पर हमारे नबी और उनके सच्चे साथियोके दिलमे वे लकडीके तीन-सौ-साठ टुकडे थे। बुत काबेकी ईट पत्थरकी तरह नबीकी नजरोमे लकडीके ढेर थे, तभी तो वह बुतोके वहाँ रहते हुए भी काबेका तवाफ (परिक्रमा) कर गए। नबी बुत-शिकन नही थे। वह बुजदिली-शिकन थे। कायरताको कुचल डालनेवाले थे। लकडी-पत्थर तोडने वे क्या भले लगते? उन्होने तोडी गुलामी, बुजदिली, कायरता। अरबोके दिलसे कायरता हटी, हिम्मत आई। बुत दिलसे हटे, फिर काबे भी

उठ गए और लकडी लकडीकी तरह काममे आ गई। यह याद रखिये, बुत-शिकनी बुत-परस्ती है। बुत-शिकन बुतको खुदा मानकर उसको तोडने जाता हे और दिलमे सोचता और कहता जाता हे, "मै तुझे तोडता हूँ, वता तू मेरा क्या बिगाड सकता हे ?" जव कि बुत-परस्त उस बुतको खुदाकी यादका एक जरिया मानता है। हमारी जवान क्या है ? एक मासका टुकडा, पर उसको हिला-हिला कर तो हम खुदाकी याद करते है। कुरान और गीता क्या हैं ? स्याही-रगे कागजके टुकडे, पर उनको पढ-पढकर हम राम-रहीमको पाना चाहते हैं। कोई बुत-परस्त या नाबुत-परस्त उनको खुदा नही कहता और न मानता हे! खलीफा उमरने अरबोका एक बुत और हटाया। कावेमे लगे 'सगे असवद' (काले पत्थर) को चूमते वक्त वे कहा करते थे, "है तो तू एक पत्थरका ही टुकडा, पर मै तुझे सिर्फ इसलिए चूमता हूँ कि नवीने तुझे वोसा दिया था (चूमा था)।" नवीने बुतोका तवाफ किया। बुत लकडी वन गए और लकडियोमे पहुँच गए। खलीफाने पत्थरको पत्थर कहा, पर उसे पत्थरोमे नही पहुँचा सके। नवी नवी थे खलीफा खलीफा। मुसलमानोने नबीकी राह वन्द कर दी और बीसवी सदीने खलीफाकी। मुझे तो खलीफाओके वाद मुस्तफा-कमाल ही मुसलमान जँचे, पर पता नही उनको इस सदीके कितने मुसलमान मुसलमान मानते है ? हाँ, सतोमे मुसलमान हुए, हुक्मरानोमे वहुत कम।

करोडो दुखी है, दुख दूर भी करना चाहते हैं, पर राह चलेगे मनकी, जमीरकी नही। प्रकृतिके नियमोको तोडकर ही चलेगे। भूखे मरेगे, नगे रहेगे या फिर शराव पियेगे, वेहोश रहेगे, मदहोश बनेगे और कपडोसे लदकर चलेगे। पेटको ठूँस-ठूँसकर भरेगे, मानो वह किसी वजाज या हलवाईके गोद लिए लडके हैं। मजाक उडायेगे किसका ? साइन्सका, ज्ञानका यानी अपना। साइन्स आखिर इन्सानी तजरवेका निचोड ही तो है, उससे चिढ क्यो ? रुपयेसे अगर कोई जहर मोल लेकर खाले, तो अपने सारे रुपयोसे चिढकर उन्हे फेक तो न दोगे। यूरोप अगर पागल होकर साइन्ससे भूचालका काम ले, तो इसमे साइन्सका क्या दोष ? इस तरह पागलपन होता रहा है, हो रहा है, होता रहेगा। यह पागलपन किसी समझदारको क्यो वेज़ार करे ? जिन्दगीके कानूनोको मानकर ही सुख मिलेगा। विज्ञानियोकी तरह तह तक पहुँचकर ही सुखी हो सकते हो।

, महावीर, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद ऐसे ही विज्ञानी थे, जैसे आर्किमीडस, न्यूटन, एडीसन इत्यादि! ये विजली और भापके किस्सोमे पडकर लगे

दुखके कारणोकी खोज करने और उन्हे खोज भी लाये। कुदरती कानूनों पर चलकर ही कुछ कर जाओगे, नही तो जिन्दगी बेकार जायगी।

जिन्दगीकी आजकी समस्याएँ पुराने हलसे नही सुलझेगी। पुराने और नये दो अलग रास्ते हैं, वह कही नही मिलते। मालाके दाने सूतसे तो मिले रहते हैं, पर वे आगे पीछे नही हो सकते। हम हिम्मत और स्पिरिट तो कृष्ण, महावीर, बुद्ध, ईसा और मुहम्मदकी अपनाएँगे, पर हम हम ही रहेंगे। स्तालिन लेनिन बनने चलता, तो न लेनिन बनता और न स्तालिन। मुस्तफा-कमाल खलीफा उमर बननेकी कोशिश करता तो तुर्कीका यह नकशा ही न होता। गाधीने गीता पढी, सुदर्शन चक्र नही सम्भाला। जैन उसे जैन कहने लगे, ईसाई ईसाई, मुसलमान मुसलमान, और हिन्दू हिन्दू। वह तो गाधी ही है और गाधी ही रहकर देह त्यागेगा।[१] तुम तुम बनो। मालामे अपनी जगहके मोती बने रहो। हिम्मतके सूत्रके सहारे टिके चमकते रहो।

ठीक है, सरकारने पुलिस तैनात कर रखी है। वह चोरको पकडेगी। मजिस्ट्रेट उसको दड देगा। जेलखाना बन्द रखेगा। तो क्या इस नाते घरमे आये चोरका मुकाबला करना छोड देते हो? तुम पुलिसकी बाट नही जोहते, चोरको पकडते हो और अगर वह हाथापाई पर उतर आता है, तो मुक्के भी जमाते हो। ठीक इसी तरह, जो खुदा करता है वही होता है। जो तकदीरमे लिखा है, वह भुगतना ही पडेगा —— क्या इस नाते हाथ पर हाथ रखे बैठे रहोगे? अगर ऐसा करते हो तो तुम कम-हिम्मत हो। सुख न पा सकोगे। हाथ, पाँव, मन, मस्तक जो तुम्हारे पास है, वह कामके लिए है, सिर्फ दिखानेकी चीज नही। खुदाके सच्चे मौतकिद हजरत मुहम्मद हाथ-पर-हाथ रखकर नही बैठे, तीर कमान लेकर फौजी जनरली भी की और बादशाह बन कर अदलो इन्साफ भी बाँटा। बाप बनकर बेटियोको पाला-पोसा और नाना बनकर धेवतोको पुचकारा ही नही, उनके ऊँट बनकर उन्हे पीठ पर चढाया। लेकिन याद रहे —— जनरली, बादशाही, बापपन और नानापन —— किसीको उन्होने अपने सिरपर नही चढने दिया। सिपाहीको कन्धे चढाया, पर जनरलीको मुँह न लगने दिया। जनरलीकी मुँहजोर घोडीकी हड्डियाँ उनके रानोके बीचमे हमेशा चरचर बोलती रही। गुलाम तकको सर चढाया, पर बादशाहीकी शेखी उनके जानुओकी रगडसे मुँहकी राह फेन उगलती रही। खजूरके तिनकोका बिछौना और उनके रूखे-सूखे फलोकी खुराक जब बादशाहीको मिले, तो वह अकड भी कैसे पाये? शायद ही कोई

१ यह लेख गाधीजीकी मृत्युके पहले लिखा गया था।

बाप हजरत-जैसा अपनी बेटीको प्यार करनेवाला मिलेगा, पर बादशाहीकी हैसियतसे वफात पाने पर भी न एक चप्पा जमीन छोडी और न एक कौडी नकदी। जो खुदाका मौतकिद और हिम्मतका पुतला है, वह अपनी औलादके लिए खनकते ठीकरे तरकेमे नही छोड जाता, उनको दे जाता है हिम्मतका खजाना।

"जो किस्मतमे लिखा है, वह होकर रहेगा।", "किया कर्म भोगना ही पडेगा"––यह कहा महावीर स्वामी और बुद्ध भगवान्ने। पर वह कब हाथ पर हाथ धर कर बैठे? वह तो बैठ सकते भी नही थे। हजरत मुहम्मदने बादशाही कमाई, पर उसे अपनाया नही। यह दोनो (महावीर, बुद्ध) उसे ओढे-ओढे आये और उतार फेका। हिम्मतवालोंको दूसरेकी दी हुई चीज पसन्द नही आती, भगवान्‌की भी दी हुई नही। जिस्म माँ-बापसे मिला था, छोडा नही जा सकता था, पर उसे छोडा-जैसा ही बना रखा था। किरायेके मकानकी तरह, भले किरायेदारकी हैसियतसे, उसे खूब लीपा-पोता, पर अपनाया नही। ये दोनो राजकुमार राजकुमारपनका कलक धोनेके लिए कुछ दिनो भूखे-प्यासे रहे, पर कुछ ही दिनो, उसके बाद इतने काममे लगे कि आज भी रेल, तार, हवाई जहाजकी दुनिया उनके कामका हिसाब नही लगा पाती। राजपाट छोडना क्या कम हिम्मतका काम है? पर उससे भी ज्यादा हिम्मतका काम है राजपना छोडना, जो इन दोनो राजकुमारोने यो ही छोड दिया। असलमे इन्होने छोडा पुराना रास्ता और निकाली नई सडक। इन्होने विज्ञानियोकी तरह परीक्षण किये और सचाई तक पहुँचे। उँगलियाँ झुलसाई, हाथ गलाये तब कुछ पाया। इन्होने फटकारे सही और आज भी यशोधराके उलहने सुन रहे हैं। अपनी देह तुडवाई, पर सिद्धान्तकी देह पर खरोंच तक न आने दी।

समझ लीजिये और खूब समझ लीजिये कि सिर्फ सच्चे, पक्के, पूरे ज्ञानसे जीवन सुखी नही हो सकता। उसमे हिम्मतकी पुट देनी ही होगी। बिल्लीकी गरदनमे घंटी बाँधनेकी बात तुम अक्लसे सोच सकते हो, पर बाँधनेकी हिम्मत नही तो सोचनेकी बात बेकार है। बेहिम्मतवालेके दानी दिमागको ठस्स ही कहना पडेगा। अर्जुनके ज्ञानको हिम्मतका पुट दिया गया था। स्तालिनके ज्ञान पर हिम्मतके कई पुट लगे हुए है। वह लोहेका नही है, खून, माँस, चमडेका ही है। पर उसका नाम लोगोने लोहेका आदमी रख लिया है।*

---

* रूसी बोलीमे लोहेके आदमीको स्टालिन कहते है।

और भी आदमी है, तुम भी आदमी हो। जो कसौटी औरोके पास है, वही तुम्हारे पास है। फिर तुम अपनी कसौटी पर कसकर ठीक-बे-ठीककी पहचान क्यो नही करते? तुमको जलेबी बनानी आती हो, या न आती हो, पर तुम खाने पर अच्छा न लगने पर होशियारसे होशियार हलवाईकी कारीगरीमे नुक्स निकालनेके हकदार हो। क्या करना ठीक है, क्या बेठीक है, इसे समझ सकते हो और बडे-से-बडे वेदपाठीकी भूल पकड सकते हो। दूसरोकी कसौटी पर कसी बाते न अपनाओ और अगर अपनानी ही पडे, तो अपनी कसौटी पर कसकर देख लो। अपनी कसौटी पर कसी बात सच्चे एतकादके नामसे पुकारी जाती है। उसीका नाम सच्चा विश्वास है। वही सम्यक्-दर्शन है। इस विश्वासमे बडा बल मिलता है। सचाई तुम्हारी ओर रहती है और तुम्हारा बल सौ-गुना हो जाता है। दूसरोकी कसौटी पर कसी बातोमे तुम्हे शक रह सकता है और रत्तीभर शक लाखो मन अक्लको बेकार कर देता है, बेजान बना देता है। जीवनमे यह बडे मार्केकी बात है। कर्णके रथको हॉकनेवाला शल्य था। शल्य कहते है शकको और कर्ण कहते है कानको। शक हमेशा कानकी राह दिल दिमागमे दाखिल होता है। सुना सुनाया धर्म शकसे खाली नही होता। कर्णके दिलमे अपनी जीतके बारेमे शल्यने शक पैदा किया था और यो उसको कमजोर बना दिया था। अर्जुन भी रुढिवादी और शक्की था, कमजोर था। उसको गीता सुनाकर, कृष्णने शक दूर कर बलवान बना दिया था। कर्णकी हिम्मत खसोटी गई। अर्जुनमे हिम्मत ठूंसी गई। एक क्षणके लिए भी अर्जुनका यदि कृष्ण (हिम्मत) साथ छोड देते, तो वह खतम हो जाता और अगर कर्णका शल्य चुपचाप सारथी रहता तो जीत कर्णकी होती। असलमे मन और मस्तककी मसल (एक दवा) और पुटाससे हिम्मतके धडाकेका चमत्कार पैदा होता है, या मन और मस्तकके गरम-नरम तारोके मिलने पर हिम्मतकी चिनगारी निकलती है और मुख दिखाई दे जाता है, फिर मिल तो जाता ही है।

कृष्ण यानी अतरात्मा या जमीरकी सलाहके सिवाय सब सलाह बेकार! सलाह ही नही है, अगर वह तुममे हिम्मत न जगा दे, तुम्हारा शक न मिटा दे, तुम्हारे मन और मस्तकको एक स्वरमे न ला दे। विश्वास, लगन, हिम्मत, श्रद्धा, एतकाद (कनविक्शन) सबका एक ही मतलब है। एतकादके बिना दाहरवा युद्ध हमारे अन्दर घुस बैठता है। दुश्मनसे लडनेके बजाय मन-मस्तक आपसमे ही लडने लगते है। बुद्धि कुछ कहती है, मन कुछ।

आत्माके दो टुकडे हो जाते है। खीचातानीमे दुश्मनको मौका मिल जाता है और सुखकी जगह दुख आ बैठता है।

सुखी रहना चाहते हो तो किसीकी शक न दूर कर सकनेवाली नसीहत मानकर न चलो, फिर चाहे वह बापकी हो, गुरुकी हो, भगवान्की हो। जब नसीहतके बाद भी शक रह गया, तो नसीहत कैसी? अगर किसी नसीहतसे तुम्हारा शक दूर हो जाय, तुममे सच्चा विश्वास पैदा हो जाय, तो उसीको मानकर चल पडो, फिर चाहे वह बच्चेकी हो, मूर्खकी हो या शैतानकी।

सुखी रहना चाहते हो तो यह खयाल दिलसे निकाल फेको कि जो कायदे चले आ रहे है, वे ठीक है। जो रिवाज चले आ रहे है, वह भले है। जो पुरानी किताबोमे लिखा है, वही आज भी ठीक है। बेशक वह जमीरकी, अतरात्माकी, कसौटी पर कसी चीजे है, पर तुम्हारी कसौटी पर नही। अगर तुम्हारी कसौटी पर ठीक उतरे तो अपना लो। फिर वे तुम्हारी है, तुम्हारी होकर रहेगी, तुम्हे सुख देगी। यही राह सुखको गई है।

५

लोभ

[आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी]

[आपका जन्म सन् १८७१ मे दौलतपुर जिला रायबरेलीमे हुआ और मृत्यु सन् १९३९ मे। पहले आप सरकारी नौकर थे पर बादमे अनीति और नौकरशाहीसे तग आकर आपने अपने पदसे इस्तीफा दे दिया और एक पत्रकारका जीवन स्वीकार किया।

द्विवेदीजी आधुनिक हिन्दी साहित्यके जनक कहे जाते है। आपने 'सरस्वती' मासिक द्वारा खडीबोलीके गद्य और पद्यका परिमार्जन किया और कितने ही साहित्य सेवियोको जनताकी सेवाके लिए तैयार किया। आप स्वय एक अच्छे लेखक और सपादक थे।]

लोभ बहुत बुरा है। वह मनुष्यका जीवन दु खमय कर देता है; क्योकि अधिक धनी होनेसे कोई सुखी नही हो सकता। धन देनेसे सुख मोल नही मिलता। इसलिए जो मनुष्य सोने और चाँदीके ढेर ही को सब कुछ समझता है, वह मूर्ख है। मूर्ख नही तो वह वृथा अहकारी अवश्य है। जो बहुत धनवान है, वह यदि बहुत बुद्धिमान और बहुत योग्य भी होता तो हम

धन ही को सब-कुछ समझते। परतु ऐसा नही है। धनी मनुष्य सबसे अधिक बुद्धिमान् नही होते। इसलिए धनको विशेष आदरकी दृष्टिसे देखना भूल है, क्योकि उससे सच्चा सुख नही मिलता। इस देशके पहुँचे हुए विद्वानोने धनको सदा तुच्छ माना है। यह बात आजकलके समयके अनुकूल नही। यूरोप और अमरीकाके ज्ञानी धन ही को बल — बल नही, सर्वस्व — समझते है। परतु जिस धनके कारण अनेक अनर्थ होते है, उस धनको प्रधानता कैसे दी जा सकती है? और देशोमे उसे भले ही प्रधानता दी जाय, परतु भारत-वर्षमे उसे प्रधानता मिलना कठिन है। जिस देशके निवासी ससार ही को मायामय अतएव दु खका मूल कारण समझते है, वे धनको कदापि सुखका हेतु नही मान सकते।

बहुत धनवान् होना व्यर्थ है। उससे कोई लाभ नही, क्योकि साधारण रीतिपर खाने-पीने और पहनने आदिके लिए जो धन काम आता है, वही सफल है। उससे अधिक धन होनेसे कोई काम नही निकलता। स्वभाव अथवा प्रकृतिके अनुसार ही खाने-पीनेकी आवश्यकताओको दूर करनेके लिए धनकी चाह होती है। दूसरोको दिखलाने अथवा उसे स्वय देखनेके लिए धन अिकट्ठा करनेसे कोई लाभ नही। कोई जगत्-सेठ ही क्यो न हो, यदि वह सितार या वीणा बजाना सीखना चाहेगा, तो उसे उस विद्याको उसी तरह सीखना पडेगा जिस तरह एक निर्धन महा कगालको सीखना पडता है। उस गुणको प्राप्त करनेमे उसकी धनाढ्यता जरा भी काम न देगी। वह उसे मोल नही ले सकता। जब उसे धनके बलसे वीणा बजानेके समान एक साधारण गुण भी नही मिल सकता, तब शान्ति, शुद्धता और धीरता आदि पवित्र गुण क्या कभी उसे मिल सकते है? कभी नही।

जिसके पास आवश्यकतासे थोडा भी अधिक धन हो जाता है, वह अपने-आपको अर्थात् यो कहिये कि अपनी आत्माको, अपने वशमे नही रख सकता। क्योकि सन्तोष न होनेके कारण वह उस धनको प्रतिदिन बढानेका यत्न करता है। अतएव वह धन किस कामका जो लोभको बढाता जाय? भूख लगने पर भोजन कर लेनेसे तृप्ति हो जाती है, प्यास लगने पर पानी पी लेनेसे तृप्ति हो जाती है, परतु धनसे तृप्ति नही होती। उसे पाकर और भी लोभ बढता है। इसीलिए धनी होना एक प्रकारका रोग है। रातको जाडेसे बचनेके लिए एक लिहाफ काफी होता है। यदि किसीके ऊपर आठ-दस लिहाफ डाल दिये जायॅ तो उसे बोझ मालूम होने लगेगा और उलटा कष्ट होगा। परतु धनकी वृद्धिसे कष्ट नही मालूम होता। इसलिए धनाढ्यता

भी एक प्रकारकी बीमारी है। जिसे भस्मक रोग होता है, वह खाता ही चला जाता है। उसे कभी तृप्ति नहीं होती। जिसे धनाढ्यता-रोग हो जाता है, वह भी कभी तृप्त नहीं होता। तृप्तिका न होना, अर्थात् आवश्यकताओंका बढ जाना ही दुःखका कारण है। और जहाँ दुःख है, वहाँ सुख रह ही नहीं सकता। उन दोनोमे परस्पर वैर है। अतएव उसीको धनी समझना चाहिए जिसकी आवश्यकताएँ कम है, क्योकि वह थोडेमें तृप्त हो जाता है। तृप्ति ही सुख है, और लोभ ही दुःख है।

संतोष नीरोगताका लक्षण है, लोभ बीमारीका लक्षण है। जो मनुष्य खाते-खाते संतुष्ट नही होता उसे अधिक खिलानेकी आवश्यकता नहीं पडती। उसके लिए वैद्यकी आवश्यकता होती है। ऐसे मनुष्योको अधिक खिलानेकी अपेक्षा उनके खाये हुए पदार्थको वमन कराके बाहर निकालना पडता है। क्योकि अनावश्यक अथवा आवश्यकतासे अधिक पदार्थ पेटमे रहनेसे रोग हुए बिना नही रहता। इसी तरह जिनको संतोष नही, अर्थात् जो लोग प्रतिदिन अधिक-अधिक धन अिकट्ठा करनेके, यत्नमे रहते हैं, उनको अधिक देनेकी अपेक्षा उनसे कुछ छीन लेना अच्छा है। क्योकि जब कोई वस्तु कम हो जाती है, तब मनुष्य बची हुईमे संतोष करता है। अतएव संतोष होनेसे उसे सुख मिलता है। संतोष न होनेसे कभी सुख नही मिलता, किसी-न-किसी वस्तुकी सदैव कमी ही बनी रहती है। लोभी मनुष्यको चाहे त्रिलोककी संपत्ति मिल जाय, तो भी उसे और संपत्ति पानेकी इच्छा बनी ही रहेगी।

लोभ एक तरहकी बीमारी है, परंतु है बडी सख्त बीमारी। सख्त इसलिए है कि वह अपनेको बढानेका यत्न करती है, घटानेका नही। जो मनुष्य भूखा होता है, वह भोजन करता है, भोजन छोड नही देता। परंतु लोभीका प्रकार उलटा है। उसे द्रव्यकी भूख होती रहती है, परंतु जब वह उसे मिल जाता है, तब उसे वह काममे नही लाता—रख छोडता है, और अधिक धन पानेके लिए दौड-धूप करने लगता है।

लोभी मनुष्य बहुधा इसलिए धन इकट्ठा करता है जिसमे उसे किसी समय उसकी कमी न पडे। परंतु उसे कमी हमेशा ही बनी रहती है। पहले उसकी कमी कल्पित होती है, परंतु पीछेसे वह यथार्थ—असली—हो जाती है, क्योकि घरमे धन होने पर भी वह काममे नही ला सकता। लोभमे असंतोषकी वृद्धि होती है, और संतोषका सुख खाकमे मिल जाता है। लोभसे भूख बढती है और तृप्ति घटती है। लोभसे मूल-धन व्यर्थ बढता है, और उसका

उपयोग कम होता है। लोभीका धन देखनेके लिए, वृथा रक्षा करनेके लिए और दूसरोको छोड जाने ही के लिए है। ऐसे धनसे क्या लाभ? ऐसे धनको इकट्ठा करनेमे अनेक कष्ट उठानेकी अपेक्षा ससार-भरमे जितना धन है, उसे अपना ही समझना अच्छा है। क्योकि लोभीका धन उसके काम तो आता नही, इसलिए उसे दूसरेका धन, मन-ही-मन, अपना समझनेमे कोई हानि नही। उससे उलटा लाभ है, क्योकि उसे प्राप्त करनेके लिए परिश्रम नही करना पडता। लोभियोको खजानेके सन्तरी समझना चाहिए। लोभी मनुष्य जब तक जीते हैं, तब तक सन्तरीके समान अपने धनकी रखवाली करते हैं और मरने पर उसे दूसरोके लिए छोड जाते है।

कोई कोई लोभी अपने पीछे अपने लडकोंके काम आनेके लिए धन इकट्ठा करते है। उनको यह समझ नही कि जिस धनके विना उनका काम चल गया, उसके विना उनके लडकोका भी चल जायगा। इस प्रकार वाप-दादेका धन पाकर अनेक लोग वहुधा उसे बुरे कामोमे लगाकर खुद भी वदनाम होते है और अपने वाप-दादेको भी वदनाम करते है।

धनवान् यदि लोभी है तो उसे रातको वैसी नीद नही आ सकती जैसी निर्धन अथवा निर्लोभीको आती है। धनवान्को निर्धनकी अपेक्षा भय भी अधिक रहता है। यदि मनुष्य लोभी है तो थोडी सपत्तिवालेसे हम अधिक सपत्तिवाले ही को दरिद्री कहेगे। क्योकि जिसे ५ रुपयेकी आवश्यकता है, वह उतना दरिद्री नही, जितना ५०० रुपयेकी आवश्यकतावाला है। कहाँ ५ और कहाँ ५००। सधनता और निर्धनता मनकी वात है। जिनका मन उदार है, वे अनुदार और लोभी मनुष्यकी अपेक्षा अधिक धनवान् है। क्योकि उदारताके कारण उनका धन किसीके काम तो आता है—चाहे वह वहुत ही थोडा क्यो न हो। वहुत धन होकर भी यदि मनुष्य लोभी हुआ और उसका धन किसीके काम न आया तो उसका होना न होना दोनो वरावर है। शेख सादीने वहुत ठीक कहा है —

"तवगरी वदिलस्त न वमाल।"—अर्थात् अमीरी दिलसे होती है, मालसे नही।

६

मशीनकी मुसीबत

[जहूरबख्श]

[आपका जन्म सन् १८९९ मे सागरमे हुआ। आप हिन्दीके पुराने सेवकोमे से है। लगभग ३० सालसे हिन्दीकी सेवा कर रहे है। प्रारभमे कुछ दिनो तक आप अध्यापक रहे पर बादमे एक स्वतत्र साहित्यिक और पत्रकारके ही रूपमे जीवन विताना आपने अधिक पसद किया। हास्यरसकी कहानियोके क्षेत्रमे आपका विशिष्ट स्थान है। 'समाजकी चिनगारियाँ', 'स्फुलिग' और 'शवनम' आपके प्रसिद्ध कहानी सग्रह है।]

हमारे पीछे जितनी बीमारियाँ हाथ धोकर पडी रहती है, उनमे से एक यह है "क्यो, साहब, आपके यहाँ फलाँ चीज है? बडी जरूरत है। कई दिनसे तलाशमे चक्कर काट रहे है—न जाने कहाँ कहाँ गए, किस-किससे पूछते फिरे, आखिर पता चला कि आपके यहाँ है। सच मानिये, हमारी तो तबीयत खुश हो गई। समझे, तब तो घर ही मे है। अब काम न रुकेगा। हाँ, तो इनायत कीजिए। बस, हम एक दो दिनमे वापस कर देगे—इतना इतमीनान रखिये। यहाँ ऐसे आदमी नही कि किसीकी चीज लाएँ, तो चुप्पी साधकर बैठ रहे, पचास तकाजे सहे, फिर भी देनेका नाम न ले।"

बताइए इस बेमोल या बिना बुलाए आई हुई मुसीबतका आपके पास क्या इलाज है? इन हजरतसे आपकी न खास रसाई है, न गहरी जान-पहचान है, फिर भी यह कितने बेतकल्लुफ है, आपके घरको बिलकुल अपना घर समझते है। ऐसी हालतमे आपके मुँहसे 'हाँ' या 'ना' बाहर निकले, तो कैसे निकले? आपके दिलमे तरह तरहके खटके बिलबिला रहे है—कौन जाने यह चीज बिगाड दे या तोडफोड डाले, तो हम इनसे क्या वसूल कर लेगे? और यह भी हो सकता है कि यह चीजको साफ डकार जाएँ; सामने पडनेका नाम भी न ले। और इतना तो इतमीनान है ही कि बगैर पाँच दस तकाजे किए हरगिज वापस न मिलेगी। फिर भी आप टुकर-टुकर ताकते रह जाते है।

इतनेमे आपके अजीज दोस्त फिर बेदर्दीसे गोली फटकारते है, "तो अब जल्दीसे दिलवा दीजिए। कसम खुदाकी, अभी हमे बडे बडे काम करने

है — न जाने कितनी दौडधूप करनी है। ज्यादा पसोपेशमे पडनेकी जरूरत नही। अजी, आप हमे क्या समझे! यहाँ तो खरे आदमी है। यह अपनी आदत नही कि किसीके तकाजे सुने और सहे। भाईजान, दुनियाका कायदा है कि एकके पास चीज होती है तो पास-पडोसके दस आदमियोके काम निकलते है। भला, वह चीज ही क्या जो वक्त जरूरत पर दस आदमियोके काम न आए?"

अव आपमे इन्सानियत है, शराफत है, तो लिहाजका फदा गुपचुप आपका गला जकड लेता है। दिल धडक रहा है, हाथोमे कँपकँपी छूट रही है, फिर भी आप चीज पेश करते है, और दवी जवानसे कहते है

"कोई वात नही, ले जाइए। मगर . मगर काम जरा एहतियातसे लीजिएगा। आप जानिए, ऐसी चीज यहाँ मिलती ही कहाँ है! अक्सर देखा जाता है कि लोगवाग जिस खुशीसे चीज ले जाते है, उस खुशीसे वापस नही करते। आए दिन तकाजे करने पडते है। अगर सही-सलामत वापस मिल जाए तो गनीमत समझिए।"

पिछले रमजान शरीफमे इस वीमारीने हमे वुरी तरह परेशान किया। वल्कि यो कहिए हमारा नाको दम कर दिया।

एक दिन मुवारककी अम्मीजानने फरमाया, "आज सोलह और चार-वीस रोज पूरे होनेको आए, मगर सिवइयाँ एक दिन भी चखनेको न मिली। फेरीवालियोका यह हाल है कि सूरत भी नही दिखाती। विना सिवइयोके रोजे फीके मालूम होते है। क्या अवकी वार रमजान शरीफ यो ही निकल जाएँगे"

हमने जवाव दिया, "यो ही निकल जाएँगे कि निकल ही जा रहे है। कट्रोलका जमाना है कि दिल्लगी! लोगोको इतना गेहूँ तो मिलता नही कि पेट भर रोटियाँ खा सके, फिर सिवइयोको कौन पूछता है! वेचारी फेरीवालियाँ कहाँसे गेहूँ लाएँ, कहाँसे सिवइयाँ वनाएँ और कहाँसे आपको चखाएँ! इस साल तो इन्ही छत्तीसगढी मोटल्ले चावलो पर सव्र कीजिए। मजेसे जरा सी शक्कर छिडकिए, इतमीनानसे चखिए और कट्रोलके हकमे दुआ कीजिए।"

मुवारककी अम्मीजान मायूस होकर वोली, "इतना तो हम भी समझते है, मगर ये नन्हे नन्हे वच्चे समझे तव न। अव आपसे कौन कहे, साल भर खुदा-खुदा करनेके वाद तो ये मुवारक दिन आते है, घर-घर लोग रोजे

रखते है, शामको वढिया वढिया चीजे चखते है, खुशियाँ मनाते है। मगर आप है कि हमे ये छत्तीसगढी मोटल्ले चावल खानेके लिए कहते है। क्यो, मुवारक, भला, ईदके दिन तू यही सडियल चावल खाएगी और अपने भाई-वहनोके साथ खुशियाँ मनाएगी ? "

मुवारकने चटसे जवाव दिया, "दादाजी जो फरमाएँ, वजा है। भला, कोई वात हे ! इतना वडा तो शहर, और वाजारमे सिवइयाँ न विकें ! लाख कट्रोल रहे, सिवइयाँ विकेगी, फिर विकेगी। हाँ, यह जरूर हे कि कट्रोलने दुकानदारोके दिमाग सातवे आसमान पर पहुँचा दिए है, इसलिए फेरीवालियाँ घर-घरकी धूल क्यो फाँकने लगी। मदरसेकी लडकियाँ वताती थी कि वाजारमे सिवइयाँ विकने आती है और खूव आती है। मगर दादाजीसे तो घर वैठे-वैठे जमीन आसमानके कुलावे मिलवा लीजिए। भला, यह और वाजारके चक्कर काटते फिरे ! मुश्किल है, विलकुल मुश्किल ! "

मुवारककी अम्मीजान वोली, "इनकी यह आदत आजकी थोडे ही है। जहाँ कही आने जानेकी वात चली और इनके काँटे उठे, लगे तरह तरहके वहाने वनाने। कट्रोल क्या, कट्रोलका वाप वना रहे, भला, दुनियाके काम रुकते है ! लोगोको गल्ला मिलता है, कपडा मिलता है, तेल मिलता है, नमक मिलता है, शक्कर मिलती है। एक यही वेचारे हैं जिनके लिए वाजार खाली पडा है। फिर सिवइयाँ लाएँ तो कहाँसे लाएँ। अरे मियाँ, सीधे-सीधे वाजारका रास्ता लीजिए। ज्यादा नही, सिर्फ पाँच सेर ले आइए। अभी किफायतसे मिल जाएँगी, वरना ज्यो ज्यो ईद करीव आती जाएगी, भाव भी चढता जाएगा। भला वरस वरसके दिन वच्चे तरसते रहेगे, तो आपको अच्छा लगेगा ? "

लाचार कपडे पहने, वटुआ जेवके हवाले किया, हाथमे थैली लटकाई और चले वाजारकी हवा खाने। मुश्किलसे एक दुकान पर कुछ सिवइयाँ नजर आईं। सिवइयाँ भी कैसी—कुछ काली सी, जिन पर वडी धूमसे 'आल इडिया मक्खी काफरेस'का जलसा हो रहा था। यह सव हाल देखते ही हमारी तवीअत हट गई। फिर भी हमने आगे वढकर दुकानदारसे दरयाफ्त किया, "वडे मियाँ, सिवइयाँ किस भाव दी है ? "

वडे मियाँने हमे घूरकर देखा, अपना दाहिना हाथ मुँहकी तरफ उठाया, होठो पर लगी हुई पानकी पीक पोछी और तव अकडकर जवाव दिया, "मोलतोलकी शर्त नही। सस्ती लगा दी है—केवल रुपए सेर। लेना हो लीजिए, वरना चलते-फिरते नजर आइए। "

भाव सुनते ही हम आसमानसे जमीन पर आ गिरे। हममे इतना साहस नही था कि आगे भावताव करते। बस आगे बढ गए।

ख्यालोमे हम कुछ ऐसे गर्क हुए कि बट साहबके दरवाजे पर जा पहुँचे और मजा यह कि हमे खबर भी नही। जब उन्होने बडे तपाकसे 'आदाबअर्ज' कहा, तब कही हम चौके। 'तस्लीमातअर्ज' कहकर उनके पास जा बैठे और बातो-ही-बातोमे उनको अपना सब हाल सुना गए।

वह हमदर्दीके लहजेमे बोले, "तोबा! आप भी किस फिक्रमे घनचक्कर हुए जा रहे है। मुफ्त मिले, तो भी हम बाजारकी सिवइयाँ न खाएँ। आप जानिए, वहाँ तो कचरेके दाम खडे किए जाते है, कचरेके! अगर पटरा हो तो घर बनवा लीजिए। मगर हम जानते है, हमारे घरोकी शरीफ-जादियाँ बैठी बैठी खाली बाते बघारा करती है। कामधधेसे उन्हे क्या वास्ता। खैर, एक काम कीजिए। सिवइयाँ बनानेकी मशीनसे काम निकालिए। दो घटे मशीन चलाई नही कि पाँच सेर सिवइयाँ तैयार। बस, अल्लाह अल्लाह खैर सल्लाह। मशीन घरमे मौजूद है। कहिए, तो हाजिर करे।" यह कहते कहते बट साहबने मशीन लाकर सामने रख दी।

उनकी इस मेहरबानीसे तबीअत खुश हो गई। मगर हमने सोचा कि मशीन ले चले, और जो कही मुबारककी अम्मीजान ऐडीबैडी सुनाने पर उतर आएँ, मुबारक और मलिका आडे हाथो लेने लगे तो? बेवकूफके बेवकूफ बने, बोझा ढोते ढोते अलग मरे। और जो कही बच्चोने मशीनका कोई पेच पुरजा तोड डाला, तो बट साहबसे मुफ्त बुराई ले।

इसीके साथ साथ एक ख्याल और आया। अगर हम खुद एक मशीन खरीद ले चले, तो क्या कहना! मजा आ जाए। फिर तो मुबारककी अम्मीजान रमजान शरीफकी कौन कहे, हमेशा अपने जिगरके टुकडोके साथ सिवइयाँ चखे और ईद मनाएँ।

बस, हमने जवाब दिया, "शुक्रिया! जरा मुबारककी अम्मीजानसे पूछ देखे। मशीन तो घरमे है ही, फिर ले जाएँगे। ऐसी जल्दी क्या है, अभी तो ईदके आठ दिन बाकी है।"

इसके बाद वहाँसे चले और लगे मशीनकी तलाशमे सडकोकी धूल फाँकने। इधर पूछा, उधर पूछा, यह दूकान तडवेड, वह दूकान तडवेड। आखिर कमल स्टोरमे मशीनके दीदार हुए। अब कमलजी है कि मशीनकी तारीफके पुल बाँधे जा रहे है।

बारह रुपयेमे सौदा तय हुआ और हम मशीन लेकर घर पहुँचे। नजर पडते ही मलिका चीखकर बोली, "अरी अम्मा, देख तो दादा क्या लाए है।"

मुबारकने आवाज लगाई, "चलो, अम्मा। यह देखो, दादाजी कितनी बढिया सिवइयाँ ले आए।"

उनकी अम्मीजान खुशखुश झपटती आई, मगर मशीन देखते ही जल उठी। बोली, "यह कौनसी बला उठा लाए? हमने तो सिवइयाँ लानेको कहा था।"

हमने जवाब दिया, "बात सुनी न समझी और लगी जलने भुनने। भला, यह कौनसी अक्लमदी है! सिवइयाँ बनानेकी मशीन लाए है—और तो कुछ नही। अभी दो घटेके अदर सिवइयोके ढेर लग जाएँगे।"

इस पर उन्होने बडी रुखाईसे फरमाया, "यहाँ सिवइयाँ बनाता कौन है? घरके कामधधोसे फुरसत मिले तब तो। हम तो आपसे हार गए।"

हमने ये बाते कानो पर उडा दी और मुबारकसे कहा, "तू भी कैसी लडकी है! जा, थोडासा आटा गूँध ला। फिर इस मशीनकी करामत देख।"

मुबारक आटा गूँध लाई और हम पलगकी पाटी पर मशीन फिट करनेको तैयार हुए।

अब तो मुबारककी अम्मीजान आपेसे बाहर हो गई, "बडे आए वहाँसे सिवइयाँ बनाने। हम पलगकी पाटी पर मशीन फिट न करने देगे। जरा ये दाँते तो देखिए, पचास रुपयेके पलगकी रौनक सत्यानाश कर देगे या नही? आजकल सौ रुपयेमे भी ऐसे पलग नही मिलेगे।"

बात पतेकी थी, इसीलिए हम चुप रह गए।

दूसरे दिन हमने भगवानदाससे कहा, "जरा बाबू हरिश्चद्र ठेकेदारके यहाँ चले जाओ। पाँच फुट लबा, छ इच चौडा और डेढ इच मोटा एक तख्ता ले आओ। कहना, सिवइयोकी मशीन फिट करनेके लिए चाहिए। हमारा नाम ले देना।"

थोडी देर बाद भगवानदासने लौटकर खबर दी कि तख्ता घर भिजवा दिया गया है। अब हमारी जान-मे-जान आई।

कामसे छुट्टी मिली, तो हम न इधर रुके न उधर, सीधे घर आए। लगे तख्तेकी जाँचपडताल करने और उस पर मशीन जमानेकी हिकमत

सोचने। आखिर तख्तेके एक सिरे पर छीलछाल कर इतना बडा खाँचा वनाना शुरू किया, जिसमे मशीनके दाँते वखूबी वैठ सके।

यह देखकर मुवारककी अम्मीजानने फरमाया, "अरे मियाँ, कहना मानो, इस खटपटसे वाज आओ। भला, कही तेलीका काम तमोलीसे हुआ है? चखा चुके आप सिवइयाँ! जव खुदाने ही किस्मतमे नही लिखी तो इन्सान वेचारा क्या करेगा? नहाओ धोओ, खाओ पीओ और अपना काम देखो।"

जव खाना वन चुका, तो हमने तख्ता दो स्टूलो पर जमाया, उसमे मशीन फिट की, तीसरे नवरका तवा लगाया और मुवारकको आवाज दी, "देखती क्या है खडी खडी! जा, जल्दीसे आटा गूँध ला, अभी दम भरमे सिवइयोके ढेर लगते है।"

मुवारक आटा गूँध लाई। हमने मशीनमे लुई डाली और मजेसे उसका हैंडिल घुमाना शुरू किया। सिवइयाँ वाहर आई, तो मुवारककी अम्मीजान नाकभौं सिकोडकर वोली, "ए तोवा! यह सिवइयाँ है या सिरके वाल! इनको पकाएगा कौन? अगर हाँडीमे आटेका पिंड वनकर न रह जाएँ तो सही। हाँ, सुराख जरा और वडे होते, तो शायद काम वन जाता। अव तो वारह रुपये पानीमे गए समझिए। महँगेका जमाना, एक एक पैसेकी तगी। मगर आपको तो हरा-ही-हरा सूझता है। झटसे गए और थोडे न वहुत, वारह रुपये फेक आए। सलाह-मशवरेकी जरूरत भी न समझी। हजार मरतवा कह दिया कि चाहे जिसकी वातोमे न आया कीजिए। मगर हमारी कोई सुने, तव न। जहाँ किसीने मीठी मीठी वाते की, और आप फिसले। आदमी वह जो सुने सवकी, करे मनकी।"

वात मार्केकी थी, दिलमे चुभ गई। मशीन भारी चल रही थी। ताकत भी ज्यादा ले रही थी, हाथोमे दर्द होने लगा था। जरा सुस्तानेका वहाना ही नही। वस, हमने तख्तेसे उतरते उतरते कहा, "तो यह वेमतलव तकरीर छाटनेके क्या माने? लीजिए, सुराख भी वडे हुए जाते है। आप यही चाहती है या और कुछ? जरा सव्रसे काम लेना सीखिए।"

इसीके साथ साथ दिमागमे एक तरकीव आई। हम एक मोटी आलपिन लेकर बैठे और लगे सुराखोमे ठोकने। थोडी देर वाद सुराख पहलेसे वडे जान पडे, तो फिर तख्ते पर जा डटे। इस वार ज्यादा ताकतकी जरूरत न पडी, मशीन हल्की चली और लगी अर्राटेमे सिवइयाँ वाहर फेकने। सिवइयाँ भी मजेकी—न ज्यादा महीन, न ज्यादा मोटी।

अब तो मुबारक और मलिका मारे खुशीके चहक उठी। उनकी अम्मीजान होठो पर मुसकान बिखेरती हुई आगे बढी और बोली, "ए, तो अब आप मशीन पर ही जमे रहेगे? उठिए, घरगृहस्थीके काम हम औरतोको ही जेब देते है। जाइए, अपना काम देखिए। कुछ हम बनाएँगे, कुछ मुबारक बनाएगी। आप चाहे तो कोई मजमून लिखिए, चाहे तो आराम कीजिए। और हाँ, यह तो हम भूल ही गए कि आपने अब तक न नहाया है, न खाना खाया है। चलिए, नहा लीजिए, खाना खा लीजिए। तब तक मशीन मुबारक चलाएगी।"

जब हम खा पी चुके, तो मुबारककी अम्मीजान मशीन पर पहुँची। मुबारक हँसते हुए बोली, "अम्मी, यह तो बडी लाजवाब मशीन है।" मशीन चलाते चलाते उनकी अम्मीजान फरमाने लगी, "बेटी, तुम्हारे अब्बाजान क्या कोई मामूली आदमी है! जो काम करते है बडी समझदारीसे करते है। हम तो पहले ही समझ गए थे कि वह मशीन लाए है, तो अब हमे सिवइयोका रोना न रहेगा। खुदा उनको सलामत रखे। ऐसे फरिश्तासिफ्त आदमी दुनियामे बिरले ही होते है। वाह, कितनी अच्छी मशीन लाए! हमारी तो तबीअत खुश हो गई।"

जिस वक्त मशीनके साथ जोर आजमाई हो रही थी, महल्लेकी एक लडकी आमना भी मौजूद थी। नतीजा वही हुआ, जो होना था। शाम होते होते घर घर यह खबर फैल गई कि मुबारकके यहाँ सिवइयाँ बनानेकी मशीन आई है।

दूसरे दिन सवेरा हुआ। हम लोगोमे सलाह ठहरी कि आज मैदाकी बढिया सिवइयाँ बननी चाहिएँ। मुबारककी अम्मीजान मैदा ठीक करने लगी।

इतनेमे झल्लन अम्मा बगलसे गुँधागुँधाया आटा दबाए दनसे आ टपकी। मुसकराकर बोली, "हम तो सुनते ही खिल उठे। बेटा, बडा अच्छा किया तुमने जो मशीन ले आए। सिवइयोका आराम तो हुआ। सोचा, चलो सेर भर सिवइयाँ हम भी बना लाएँ। अभी आध घंटेमे तो बनती है। कहाँ है वह मशीन? हमने तो कभी देखी न सुनी। मालूम हुआ है कि अर्राटेसे सिवइयाँ उगलती है। जरा लाओ तो।"

मुबारकने तख्ते पर मशीन फिट कर दी, तो झल्लन अम्माने फरमाया, "बेटी, हम ठहरे बूढे पुराने आदमी, कभी मशीन देखी न परखी, चलाना क्या जाने? जरा तुम्ही दिखाओ कि किस तरह चलाई जाती है?"

मुबारकने मशीन चलाई। सिवइयाँ बाहर आने लगी, तो झल्लन अम्माने खुशी खुशी हुक्म चलाया, "वाह, क्या कहना है! ये है सिवइयाँ, तुम तो बडी होशियार हो, अच्छी तरह मशीन चला लेती हो। मगर, भई, यह ताकत तो बहुत लेती है। हम बूढे पुराने आदमियोमे इतनी ताकत कहाँ? ए हीरा सी बेटी, बस तुम्ही चलाए जाओ। हम डोर लेते है।"

थोडी देरमे करीमन चची आ पहुँची, बगलमे आटेकी थाली लिए, आँखोमे खुशी भरे और होठो पर हँसी। उन्होने कदम रखते ही झल्लन अम्मा पर एक तीर छोडा, "अरे झल्लो, तुमने तो गजब कर दिया। कितना आटा ले आई? खुदा झूठ न बुलाए, तो सेर सिवइयाँ तो बन चुकी होगी और अभी तीन सेरसे ऊपर आटा बाकी होगा। औरोको भी मौका देना चाहिए।"

झल्लन अम्मा चिढकर बोली, "तुमसे वास्ता? हम चाहे दस सेर लाएँ, चाहे बीस सेर, तुम दखल देनेवाली कौन? जिनकी मशीन है, वह बेचारे तो कुछ कहते ही नही, यह आ गई दालभातमे मूसलचद बनने।"

करीमन चचीने जवाब दिया, "ए झल्लो, तुम तो लडने पर उतर आई! भला, मैने ऐसी कौनसी बात कही जो तुम इस तरह बिखरने लगी? शौकसे अपनी सिवइयाँ बनाओ। वक्त मिलेगा, तो मै बना लूँगी। इसमे लडने झगडनेकी क्या जरूरत!"

झल्लन अम्माने हँसकर कहा, "अब आई तुम रास्ते पर। आओ, बैठो।"

करीमन चची हँसते हँसते बैठ गई। ज्यो ही उन्होने डोर लेना शुरू किया, त्यो ही झल्लन अम्मा एक तरफ खिसकी और लगी दुनिया भरकी गप्पे घोटने। थोडी देरमे जो उनकी सिवइयाँ तैयार हुई, तो फिर कौन बैठना है। झटपट चलती बनी। हाँ, गीली सिवइयाँ सुखाने और उनकी रखवाली करनेका भार अलबत्ता हम लोगो पर छोड गई।

अब करीमन चचीकी बारी आई। उन्होने मशीनका हैडिल घुमाते-घुमाते कहा, "ए मलिदा, तुम वहाँ खडी खडी क्या देख रही हो? जरा यहा आकर बैठो। न हो, डोर ही लेती जाओ। हम मशीन चलाते रहेगे, तो डोर कौन लेगा? तुम्हारे ही भरोसे तो यह आटा गूँधकर लाए है।"

अभी उनकी बात खतम भी न होने पाई थी कि फहीमन बूआ दनदनाती हुई दिखाई दी, "ए, जरा हम भी देखे कि जहूर भैया कैसी मशीन

लाए है? यही है न? मगर इसमे तो कोई करामत नही जान पडती। नाहक रुपये खर्च किए। भैया, हमारे कहनेका बुरा तो जरूर लगेगा, मगर हम कहते तुम्हारे भलेकी है। सिवइयाँ तो बस पटरेकी होती है—कितनी हलकी, कितनी लज्जतदार, खानेवालेके दिलकी कली खिल जाए। मगर हम तो केवल सवा सेर आटा लाए है। ए करीमन खाला, न हो, तुम फिर बना लेना। आटा भी कौन थोडा लाई हो, पाँच सेरसे ज्यादा ही होगा। सारा दिन तो तुम्ही ले लोगी, फिर हम कब बनाएँगे? हमे जल्दी न होती तो कभी इतना न कहते।"

इसी वक्त खत्तो और बत्तो भी आ धमकी और लगी उतावली मचाने कि हमे भी सिवइयाँ बनानेका मौका मिले।

जब हमने देखा कि जगेअजीम छिडनेमे देर नही है, तो हमारे कान खडे हुए। हमने फौरन उनके सामने दरख्वास्त पेश की, "आप लोग यो हगामा या कोहराम न मचाएँ। खामोश होकर आरामसे बैठे। सबको मौका मिलेगा। यह खुशीका वक्त है, मिलजुलकर काम निकाल लीजिए। लडने-झगडनेकी क्या जरूरत! मशीन तो एक ही है। कोई आगे कोई पीछे। ऐसा तो नही हो सकता कि सब एक साथ मशीन पर "

अभी हमारी दरख्वास्त खतम भी न होने पाई कि तूफानकी तरह वहीदन नानीकी सवारी आ पहुँची। उनके दीदार पाते ही कोई इधर सिमटी, कोई उधर और यह तो सभीकी जबान मुबारकसे निकला, "आओ, नानी, आओ। बैठो।"

नानी एक एकको घूरकर बोली, "अरे, यहाँ तो करीमन, फहीमन, बत्तो, खत्तो वगैरह सभी मौजूद है। ताअज्जुबकी बात है कि तुम सब-की-सब मशीन पर दीवानी हो रही हो। चुल्लू भर पानीमे डूब मरनेकी बात है। मुबारककी अम्मा, लाओ, मशीन इधर बढाओ। केवल दो सेर मैदा तो है ही, घटे भरमे काम हो जाएगा। हमारी मशा तो नही थी, मगर वह मुआ नुदरत न माना। हमने कहा, लिए आते है—घरकी तो चीज है। अभी घटे भरमे वापस कर देगे।"

मुबारककी अम्माने कहा, "सो तो नानी, चीज आपकी ही है। मगर अभी करीमन चचीका आटा कहाँ खतम हुआ है। फहीमन बूआ बैठी है—खत्तो और बत्तो आटा गूँध लाई है। आज इन लोगोकी सिवइयाँ बन जाने दीजिये। आप कल सुबह मशीन मँगवा लीजिये। कुछ इनकार थोडे ही है।"

इतना सुनना था कि वहीदन नानी जल उठी। तिनककर वोली, "ए हए, पाँच रुपल्लीकी मशीन और इतना गरूर! टकेसा जवाब दे दिया, मोतीसी आब उतार ली! हम तो पहले ही जानते थे। मगर मुआ नुदरत पजे झाडकर पीछे पड गया। खैर, रखे रहो अपनी मशीन। अगर मशीनकी सिवइयाँ न चखेंगे, तो मर थोडे ही जायेंगे। सलामत रहे हमारा पटरा।"

झल्लन अम्मा, करीमन चची, फहीमन बूआ, खत्तो और बत्तोके झमेलेसे शाम होते होते बमुश्किल छुट्टी मिली। मुबारककी अम्मीजान ठडी साँस लेकर वोली, "इस मशीनका लाना तो अखर गया। खुदा झूठ न बुलाए, सेर सेर कहते सबकी सब और नही तो बीस सेर सिवइयाँ जरूर बना ले गई होगी। यह तो, खैर, कोई बुरी वात नही, मगर यहाँ तो कचूमर निकल गया। कसम ले लो, जो किसीने पाँच मिनट कमर सीधी करनेकी फुरसत पाई हो। बच्चे अलग दिन भर परेशान हुए। रोजा अफतारनेके वाद ही खाना चाहिये। अब कब चूल्हेमे आग पडेगी, कब खाना तैयार होगा? आज तो खाते पीते वारहकी गजर बजेगी।

हम क्या कहते, बात सही थी। अगर पहले मालूम होता कि यह मशीन आनन-फाननमे ऐसी मुसीबतकी शकलमे बदल जाएगी, तो दिलमे इसके खयालको भी जगह न देते। अब तो हमारी आँखोमे अगले दिनकी तसवीर नाच रही थी — जब हम स्कूल चले जाएँगे, बच्चे भी स्कूल चले जाएँगे और यहाँ मैदान खाली पाकर मुहल्ले भरकी औरते धावा बोल दगी, और मुबारककी अम्मीजानको नाको चने चबवाकर छोडेगी।

हमारा सोचना गलत नही था। अगले दिन सवेरा हुआ नही कि झल्लन अम्मा मैदाका पिड लिए हाज़िर थी। वोली, "हमने सोचा घरकी मशीन है, दो-तीन सेर और बना लाएँ, फिर तो साल भरके लिए फ़ुरसत है। मुबारक बेटी, जरा लाना जल्दीसे मशीन।"

इतनेमे फहीमन बूआ आ खडी हुई और अुनके पीछे पीछे शरीफन खालाकी सवारी आ पहुँची। फिर तो वह ताँता बँधा कि ख़ुदाकी पनाह हमारी भी हिम्मत टूट गई। वक्तके पहले ही स्कूलकी तरफ भाग खडे हुए। रास्तेमे मियाँ महमूदी दरवाजे पर बैठे दिखाई दिए। अकडकर बोले, "क्योजी, कल मशीनके लिए इनकार कर दिया। क्या टूट जाती? हमने तो घर समझकर सलारूको भेज दिया था। मगर अफसोस है इस वेमुरौवती पर! आपने हमे समझा क्या है? चाहे तो खडे दस पचास मशीने खरीद ले और ख़ैरात कर दे।"

मनमे आया कि कह दे, हमारी चीज, नही देते। आपका इजारा! फिर सोचा, वात वढानेसे क्या फायदा! चुप्पी हजार वलाओको टालती है। इसलिए विना कुछ कहे सुने आगे वढ गए।

पाँच मिनट वाद ही मियाँ कुदरत दिखाई दिए। वोले, "कहाँ चल दिए? हम तो आपके यहाँ जा रहे है।"

"क्यो, खैरियत तो है?"

"जरा चलकर वह मशीन तो दे दीजिए।"

"अभी तो हम ड्यूटी पर जा रहे हैं।"

"दस मिनटके लिए लौट चलिए न।"

"वाह, क्या कहना! हम वक्तकी पावदी न करे, ड्यूटी पर पहुँचनेमे देर लगाएँ, मगर लौटकर आपको मशीन जरूर दे दे। अच्छे रहे! फिर देखा जाएगा।"

"अरे साहव, ऐसा न कीजिए। गजव हो जाएगा। फिर हमे सिवइयाँ वनानेके लिए वक्त कहाँ मिलेगा!"

मगर हम उसकी उतावली पर मुस्कराते हुए आगे वढ गए। जव शाम होने पर घर लौटे, तो क्या देखते हैं कि तमाम छत सिवइयोंमे पटी पडी है, कमरेमे औरतो और लडकियोका मेला लगा हुआ है। अव हमे लकवा-सा मार गया। ज्यो-त्यो करके मैदान खाली हुआ, तो मुवारककी अम्मीजान एकवारगी हम पर वरस पडी, "यह आपसे कहा किसने था कि सिवइयाँ वनानेकी मशीन ले आइए? पता नही, हमने ऐसे कौनसे गुनाह किये है, जो आप इस कदर हमारे पीछे हाथ धोकर पडे रहते हैं। कसम ले लीजिए, इस मशीनने हमारी जान अजावमे डाल रखी है। सवेरेसे अव तक दम लेनेकी फुरसत मिली किस दुश्मनको है! अव हम घरका कामकाज देखे या मुहल्लेवालोकी नाजवरदारी करे? जो आती है, वस, यही रटती हुई पहले हमे वना लेने दो। हमारा आटा है ही कितना? ढाई-तीन पाव। वताइए, हम किसे पीछे हटा दे, किसे आगे वढा दे? जिसे जरा देर लगती है, वही विगडती है, लालपीली आँखे दिखलाती है, गोया हम उसके कर्जदार हो। समझमे नही आता कि हम किसके भले वने, किसके वुरे। रोजोके दिन, यो ही वदनमे मुर्दनी छाई रहती है, ऊपरसे यह इल्लत। गोया हम आदमी नही हैं, जानवर है। अव हम कव खाना पकाएँ, कव आपको खिलाएँ, कव वच्चोको खिलाएँ और कव खुद खाएँ? वस, जैसे हो इस मशीनका मुँह काला कीजिए, वर्ना कहे देते है, वुरी ठहरेगी।"

हमने जवाब दिया, "तो अल्लाका नाम लेकर गुस्सा थूक दीजिए। आप जैसा चाहती हैं, हम वैसा ही करेंगे — अभी, लगे हाथो।"

इतनेमे मियाँ महमूदी आ पहुँचे और बोले, "अब तो मुहल्लेकी औरते बना चुकी होगी। लाइए, दीजिए या अब भी कोई बहाना है?"

हम गुस्सेमे भरे ही थे, मशीन फौरन उनके सामने ले गए।

वह अभी जाने ही न पाए थे कि मियाँ कुदरत फट पडे। मशीन देखते ही खिल उठे। बोले, "जरा हम भी देखे।"

यह कहकर उन्होने मियाँ महमूदीके हाथसे मशीन ले ली और चलते चलते फरमाया, "शुक्रिया! खातिर जमा रखिए, बखैरियत आपके पास वापस आ जाएगी — ज्यो-की-त्यो।"

मियाँ महमूदी टुकुरटुकुर ताकते रह गए। हमने कहा, "बुरा हुआ। आपने कुछ कहा भी नही!"

उन्होने जवाब दिया, "वह लुच्चोका सरदार है। हम उससे जबाँदराजी करते और अपनी आबरू खोते? वाह, अच्छे रहे!"

अब महल्लेकी औरतोको क्या पता कि मशीन मियाँ कुदरतके दौलत-खानेकी रौनक बढा रही है। सवेरा होते ही आ पहुँची आटा ले लेकर। मगर असलियत मालूम होते ही लगी मियाँ कुदरतकी सात पीढियोको कोसने।

बर्रोके छत्तेमे कौन हाथ डाले — यह सोचकर हम चुप रहे और मन-ही-मन खुदासे दुआ मागने लगे कि कही कुदरत मियाँ मशीन लिए न आ पहुँचे। खुदाने हमारी दुआ डटकर कबूल की। मियाँ कुदरत लगातार तीन दिन तक दिखाई न दिए।

चौथे दिन मुबारककी अम्मीजान बोली, "तो मशीन उसी हरामजादेके यहाँ पडी रहेगी? जैसी ही दी, वैसी ले आओ। भला, पराई चीज कोई अपने मनमे वापस करता है? अब ईदके चार ही दिन तो बाकी है। मशीन आ जाएगी, तो मैदाकी कुछ सिवइयाँ बन जाएँगी। बेचारी महल्लेवालियाँ फडफडा रही है। उनका भी काम बन जाएगा। किसीके यहाँ चीज होती है, तो चार औरते लेना ही चाहती है।"

हमने जवाब दिया, "आपकी ये दोरगी बाते हमे पसद नही आती। उस दिन तो आपेसे बाहर थी। कहती थी, उस मशीनका मुँह काला करो, महल्लेकी औरते हमारी जान नोचे खाता है। अब चार दिन बाद ऐसी बाते करने लगी। यह गिरगिटकी तरह रग बदलना!"

ख़ैर, हम मियाँ कुदरतके यहाँ पहुँचे। उन्होंने हमे देखते ही कहा, "क्या कहे, भाई, कम्मू मियाँ आए और जबरदस्ती ले गए। हमने हजार कहा, मगर भला वह किसकी सुनते है, लेकर ही टले। अब इस पर यह सितम देखिए कि उनके यहाँसे शकूर मामू लेकर चलते हुए। मगर फिक्र न कीजिए। मशीन आपकी गुमेगी नही। आप चलिए। हम अभी जाकर पता लगाते है और लेकर आपके पीछे पीछे आते है।"

मगर मियाँ कुदरतकी जूतीको गरज पडी थी, जो वह मशीन लेकर हमारे पीछे पीछे आते। शाम होते ही हमने फिर उनके यहाँ जाकर तकाजा किया, तो उन्होने जवाब दिया, "क्या कहे, साहब, हम तो मशीन लाकर मुसीबतमे फँस गए। इतना पता अलबत्ता चलता है कि मशीन शकूर मामूके यहाँसे खैराती भिश्तीके यहाँ पहुँची है। न हो, आप ही उसके यहाँ चले जाइए। हमे कुछ जरूरी काम है, नही तो हम ही चले जाते।"

अब तो हमारे बदनमे एडीसे चोटी तक आग लग गई। हमने कहा, "वाह, अच्छी दिल्लगी रही! अब हम ख़ैरातीके यहाँ जाएँ? हमने मशीन आपको दी थी या खैरातीको? देखिए, भलमनसाहतकी बात यह है कि आप चुपकेसे हमारी चीज हमारे हवाले कीजिए। हम ऐसे चकमोमे आनेवाले नही।"

फिर क्या था, मियाँ कुदरत खुल पडे, "अरे, तो इस जबाँदराजीकी क्या जरूरत? आप अपनी मशीन ही लेगे या किसीकी जान? पाँच रुपल्लीकी चीज और दिमाग आसमान पर! अगर खैराती भिश्तीके यहाँ चली गई, तो कोई गुनाह हो गया? हमने आप जैसा ओछा आदमी आज तक नही देखा। जरासी तो चीज, मगर जान उसीमे धरी है। तोबा तोबा! जाइए, अपना रास्ता नापिए! हम अभी जाते है और बाएँ हाथमे फेके देते है। समझे?"

मगर मियाँ कुदरतमे कहाँ इतनी गैरत जो वह अपना वादा पूरा करे और मशीन हमारे घर दे जाएँ। हमने सवेरा होते ही फिर उनका दरवाजा खटखटाया। "क्यो, भई, यह क्या बात है? हमने आपको मशीन दी है या कोई गुनाह किया है? आखिर हमारे यहाँ भी ईद होगी, हमारे बच्चे भी सिवइयाँ चखना चाहेगे। मगर आपके कानो पर जूँ भी नही रेंगती। हमारी भलमनसाहत देखिए, हमने तो सिवइयाँ बनाई नही और मशीन

आपको दे डाली। इतने पर भी आप यो पेश आते है। आख़िर आपका मतलव क्या है?"

मियाँ कुदरतने जवाव दिया, "तो कह ही डाले? अच्छा, सुनिए। अपनी आदत है कि कुल काम कानून-कायदेके मुताविक करते है। न जौ भर इधर, न जौ भर उधर। न हम आपसे मशीन लाए, न आपको देनेके जिम्मेदार। माँगे तो मियाँ महमूदी, न माँगे तो मियाँ महमूदी। वीचमे दख़ल देनेवाले आप कौन?"

हमने लौटकर मियाँ महमूदीको यह हाल सुनाया। उन्होने कहा, "हम तो पहले ही जानते थे। वह नवरी वदमाश है। मशीन देनेके लिए थोडे ही ले गया था। मगर इसमे हमारा क्या कसूर? साफ इनकार कर देना था।"

यह कहकर उन्होने सलारूको भेजा। उसने लौटकर वतलाया, "वाह, आपने भी हमे किस कमीनेके यहाँ भेज दिया! वोलता था, 'जाकर अपने मियाँसे कहो, पहले मशीन ख़रीदे, फिर जवान पर ऐसी वात लानेका हौसला करे। हम जहाँसे लाए है, वही दे आएँगे। जो वीचमे दखल दे, उनकी ऐसीकी तैसी।'"

मिया महमूदी वोले, "छोडिए भी, कौन वडी चीज है। मशीन तो मियाँ कुदरतके वाप देते फिरे, मगर जरासी वातको तूल देनेसे क्या फायदा। आख़िर आप मशीन लाए कितनेमे थे? दो-तीन रुपये ही मे न? इसने कममे मिलने क्यो लगी, महँगेका जमाना ठहरा। जो हो, अव तो यह समझकर सब्र कीजिए कि दमडीकी हाँडी फूटी तो फूटी, कुत्तेकी जात तो पहचानी गई।"

लीजिए साहव, हो गया फैसला। मशीन हमेशाके लिए हमारे हाथोसे निकल गई। हमने भी कसम खाई कि अव जो कभी सिवइयाँ वनानेकी मशीन ख़रीदे, तो हम पर तीन हरफ।

७

जीवनमे साहित्यका स्थान

[श्री प्रेमचन्द]

[श्री प्रेमचन्द (धनपतराय)का जन्म बनारसमे सन् १८८० मे हुआ और मृत्यु सन् १९३६ मे हुई। आपके पिता डाकखानेमे साधारण क्लर्क थे। मातापिताका देहान्त बचपनमे ही हो जानेके कारण आपको शुरूमे ही कठिनाइयोका सामाना करना पडा। मेट्रिक पास करके शिक्षक हुए, जैसे तैसे बी० ए० किया और बढते बढते स्कूलोंके डिप्टी इन्स्पेक्टरके पद तक पहुँच गए। पहले आप उर्दूमे लिखते थे पर बादमे हिन्दीमे लिखने लगे। आपने लगभग तीन सौ कहानियाँ और अेक दर्जन उपन्यास लिखे है। हिन्दीमे आप उपन्यास सम्राटके नामसे विख्यात है। 'सेवासदन', 'निर्मला', 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' आपके प्रसिद्ध उपन्यास है। आपकी कहानियोका अनुवाद लगभग सभी देशी भाषाओमे और अंग्रेजी, रूसी, जर्मन, डच और जापानी आदि विदेशी भाषाओमे हो चुका है। प्रेमचन्दजीकी कहानियोका संग्रह 'मानसरोवर' मे हुआ है। समय समय पर आपकी लेखनीसे जो साहित्यिक और आलोचनात्मक लेख निकले है, वे भी बडे मार्मिक और पुरअसर है। आपके ऐसे लेख 'कुछ विचार' नामक पुस्तकमे छप गये है।]

साहित्यका आधार जीवन है। इसी नीव पर साहित्यकी दीवार खडी होती है। उसकी अटारियाँ, मीनार, और गुम्बद बनते है, लेकिन बुनियाद मिट्टीके नीचे दबी पडी है। उसे देखनेको भी जी नही चाहेगा। जीवन परमात्माकी सृष्टि है, इसलिए अनन्त है, अबोध है, अगम्य है। साहित्य मनुष्यकी सृष्टि है, इसलिए सुबोध है, सुगम है और मर्यादाओंसे परिमित है। जीवन परमात्माको अपने कामोका जबाबदेह है या नही, हमे मालूम नही, लेकिन साहित्य तो मनुष्यके सामने जबाबदेह है। इसके लिए कानून है, जिनसे वह इधर उधर नही हो सकता। जीवनका उद्देश्य ही आनन्द है। मनुष्य जीवनपर्यंत आनन्दकी खोजमे पडा रहता है। किसीको वह रत्न, द्रव्यमे मिलता है, किसीको भरे-पूरे परिवारमे, किसीको लम्बे-चौडे भवनमे, किसीको ऐश्वर्यमे, लेकिन साहित्यका आनन्द इस आनन्दमे

ऊँचा है, इससे पवित्र है। उसका आधार सुन्दर और सत्य है। वास्तवमे सच्चा आनन्द सुन्दर और सत्यसे मिलता है, उसी आनन्दको दर्साना, वही आनन्द उत्पन्न करना, साहित्यका उद्देश्य है। ऐश्वर्य या भोगके आनन्दमे ग्लानि छिपी होती है। उससे अरुचि भी हो सकती है, पश्चात्ताप भी हो सकता है, पर सुन्दर ओर सत्यसे जो आनन्द प्राप्त होता है, वह अखड है, अमर है।

साहित्यके नौ रस कहे गये हैं। प्रश्न होगा, बीभत्समे भी कोई आनन्द है? अगर ऐसा न होता, तो वह रसोमे गिना ही क्यो जाता। हा, है। बीभत्समे सुन्दर और सत्य मौजूद है। भारतेन्दुने श्मशानका जो वर्णन किया है, वह कितना बीभत्स है। प्रेतो और पिशाचोका अधजले मासके लोथडे नोचना, हड्डियोको चटर-चटर चबाना, बीभत्सकी पराकाष्ठा है, लेकिन वह बीभत्स होते हुए भी सुन्दर है, हालाँकि उसकी सृष्टि पीछे आनेवाले स्वर्गीय दृश्यके आनन्दको तीव्र करनेके लिए ही हुई है। साहित्य तो हरएक रसमे सुन्दर खोजता है—राजाके महलमे, रककी झोपडीमे, पहाडके शिखर पर, गदे नालोके अदर, ऊषाकी लालीमे, सावन-भादोकी अँधेरी रातमे। और यह आश्चर्यकी बात है कि रककी झोपडीमे जितनी आसानीसे सुन्दर मूर्तिमान दिखाई देता है, महलोमे नही। महलोमे तो वह खोजनेसे मुश्किलोसे मिलता है। जहाँ मनुष्य अपने मौलिक यथार्थ अकृत्रिम रूपमे है, वही आनन्द है। आनन्द कृत्रिमता और आडम्बरसे कोसो दूर भागता है। सत्यका कृत्रिमसे क्या सम्बन्ध, अतएव हमारा विचार है कि साहित्यमे केवल अेक रस है और वह शृगार है। कोई रस साहित्यिक दृष्टिसे रस नही रहता और न उस रचनाकी गणना साहित्यमे की जा सकती है, जो शृगार-विहीन और अ-सुन्दर हो। जो रचना केवल वासना-प्रधान हो, जिसका उद्देश्य कुत्सित भावोको जगाना हो, जो केवल बाह्य जगत्से सम्बन्ध रखे, वह साहित्य नही है। जासूसी उपन्यास अद्भुत होता है, लेकिन हम उसे साहित्य उसी वक्त कहेगे, जब उसमे सुन्दरका समावेश हो। खूनीका पता लगानेके लिए सतत उद्योग, नाना प्रकारके कष्टोको झेलना, न्याय-मर्यादाकी रक्षा करना, ये भाव है, जो इस अद्भुत रसकी रचनाको सुन्दर बना देते है।

सत्यसे आत्माका सम्बन्ध तीन प्रकारका है। एक जिज्ञासाका सम्बन्ध है, दूसरा प्रयोजनका सम्बन्ध है और तीसरा आनन्दका। जिज्ञासाका सम्बन्ध दर्शनका विषय है, प्रयोजनका सम्बन्ध विज्ञानका विषय है और साहित्यका विषय केवल आनन्दका सम्बन्ध है। सत्य जहाँ आनन्दका स्रोत बन जाता

है, वही वह साहित्य हो जाता है। जिज्ञासाका सम्बन्ध विचारमे है, प्रयोजनका सम्बन्ध स्वार्थ-बुद्धिसे। आनदका सम्बन्ध मनोभावोंमे है। साहित्यका विकास मनोभावों द्वारा ही होता है। एक ही दृश्य या घटना या काण्डको हम तीनो ही भिन्न भिन्न नजरोसे देख सकते है। हिममे ढँके हुए पर्वत पर ऊषाका दृश्य दार्शनिकके लिए गहरे विचारकी वस्तु है, वैज्ञानिकके लिए अनुसधानकी, और साहित्यके लिए विह्वलताकी। विह्वलता एक प्रकारका आत्म-समर्पण है। यहाँ हम पृथक्ताका अनुभव नही करते। यहाँ ऊँच-नीच, भले-बुरेका भेद नही रह जाता। श्री रामचन्द्र शवरीके जूठे वेर क्यो प्रेमसे खाते है, कृष्ण भगवान विदुरके शाकको क्यो नाना व्यजनोंमे रुचिकर समझते है, इसीलिए कि उन्होने इस पार्थक्यको मिटा दिया है। उनकी आत्मा विशाल है। उसमे समस्त जगत्के लिए स्थान है। आत्मा आत्मामे मिल गई है। जिसकी आत्मा जितनी ही विशाल है, वह उतना ही महापुरुष है। यहाँ तक कि ऐसे महान् पुरुष भी हो गये है, जो जड जगत्से भी अपनी आत्माका मेल कर सके है।

आइये देखे, जीवन क्या है? जीवन केवल जीना, खाना, सोना और मर जाना नही है। यह तो पशुओका जीवन है। मानव-जीवनमे भी यह सब प्रवृत्तियाँ होती है, क्योकि वह भी तो पशु है। पर इनके उपरान्त कुछ और भी होता है। उनमे कुछ ऐसी मनोवृत्तियाँ होती है, जो प्रकृतिके साथ हमारे मेलमे बाधक होती है, कुछ ऐसी होती है, जो इस मेलमे सहायक बन जाती है। जिन प्रवृत्तियोमे प्रकृतिके साथ हमारा सामजस्य बढता है, वह वाछनीय होती है, जिनसे सामजस्यमे बाधा उत्पन्न होती है, वे दूषित है। अहकार, क्रोध या द्वेष हमारे मनकी बाधक प्रवृत्तियाँ है। यदि हम इनको बेरोक-टोक चलने दे, तो निस्सन्देह वह हमे नाश और पतनकी ओर ले जायँगी। इसलिए हमे उनकी लगाम रोकनी पडती है, उन पर सयम रखना पडता है, जिसमे वे अपनी सीमासे बाहर न जा सके। हम उन पर जितना कठोर सयम रख सकते है, उतना ही मगलमय हमारा जीवन हो जाता है।

किन्तु नटखट लडकोसे डाँटकर कहना—तुम बडे बदमाश हो, हम तुम्हारे कान पकडकर उखाड लेगे—अक्सर व्यर्थ ही होता है, बल्कि उस प्रवृत्तिको और हठकी ओर ले जाकर पुष्ट कर देता है। जरूरत यह होती है, कि बालकमे जो सद्वृत्तियाँ होती है, उन्हे ऐसा उत्तेजित किया जाय कि दूषित वृत्तियाँ स्वाभाविक रूपसे शान्त हो जायँ। इसी प्रकार मनुष्यको भी आत्मविकासके लिए सयमकी आवश्यकता होती

है। साहित्य ही मनोविकारोके रहस्य खोलकर सद्वृत्तियोको जगाता है। सत्यको रसो द्वारा हम जितनी आसानीसे प्राप्त कर सकते है, ज्ञान और विवेक द्वारा नही कर सकते, उसी भाँति, जैसे दुलार-चुमकार कर बच्चोको जितनी सफलतासे वशमे किया जा सकता है, डाँट-फटकार कर सम्भव नही। कौन नही जानता कि प्रेमसे कठोर-से-कठोर प्रकृतिको नरम किया जा सकता है। साहित्य मस्तिष्ककी वस्तु नही, हृदयकी वस्तु है। जहाँ ज्ञान और उपदेश असफल होता है, वहाँ साहित्य बाजी ले जाता है। यही कारण है कि हम उपनिषदोको और अन्य धर्मग्रन्थोको साहित्यकी सहायता लेते देखते है। हमारे धर्माचार्योंने देखा कि मनुष्य पर सबसे अधिक प्रभाव मानव-जीवनके सुख-दु खके वर्णनसे ही हो सकता है और उन्होने मानव-जीवनकी वे कथाएँ रची, जो आज भी हमारे आनन्दकी वस्तु है। बौद्धोकी जातक-कथाएँ, तौरीत, कुरान, इञ्जील ये सभी मानवी कथाओके सग्रह-मात्र है। उन्ही कथाओ पर हमारे बडे बडे धर्म स्थिर है। वही कथाएँ धर्मकी आत्मा है। उन कथाओको निकाल दीजिये, तो उस धर्मका अस्तित्व मिट जायगा। क्या उन धर्म-प्रवर्तकोने अकारण ही मानवी जीवनकी कथाओका आश्रय लिया? नही, उन्होंने देखा कि हृदय द्वारा ही जनताकी आत्मा तक अपना सदेश पहुँचाया जा सकता है। वे स्वय विशाल हृदयके मनुष्य थे। उन्होंने मानव-जीवनसे अपनी आत्माका मेल कर लिया था। समस्त मानव-जातिसे उनके जीवनका सामजस्य था। फिर वे मानव-चरित्रकी उपेक्षा कैसे करते?

आदि कालसे मनुष्यके लिए सबसे समीप मनुष्य है। हम जिसके सुख-दु ख, हँसने-रोनेका मर्म समझ सकते है, उसीसे हमारी आत्माका अधिक मेल होता है। विद्यार्थीको विद्यार्थी-जीवनसे, कृषकको कृषक-जीवनसे जितनी रुचि है, उतनी अन्य जातियोसे नही, लेकिन साहित्य जगत्मे प्रवेश पाते ही यह भेद, यह पार्थक्य मिट जाता है। हमारी मानवता जैसे विशाल और विराट होकर समस्त मानव-जाति पर अधिकार पा जाती है। मानव-जाति ही नही, चर और अचर, जड और चेतन सभी उसके अधिकारमे आ जाते है। उसे मानो विश्वकी आत्मा पर साम्राज्य प्राप्त हो जाता है। श्री रामचन्द्र राजा थे पर आज रक भी उनके दु खसे उतना ही प्रभावित होता है जितना कोई राजा हो सकता है। साहित्य वह जादूकी लकडी है, जो पशुओमे, ईंट-पत्थरोमे, पेड-पौधोमे भी विश्वकी आत्माका दर्शन करा देती है। मानव-हृदयका जगत्, इस प्रत्यक्ष जगत् जैसा नही

है। हम मनुष्य होनेके कारण मानव-जगत्के प्राणियोमे अपनेको अधिक पाते है, उसके सुख-दु ख, हर्ष-शोक और विषादसे ज्यादा विचलित होते है। हम अपने निकटतम बन्धु-बाधवोसे अपनेको अितना निकट नही पाते, इसलिए कि हम उनके एक-एक विचार, एक-एक उद्गार जानते है। उसका मन हमारी नजरोके सामने आईनेकी तरह खुला हुआ है। जीवनमे ऐसे प्राणी हमे कहाँ मिलते है, जिनके अन्त करणमे हम इतनी स्वाधीनतामे विचर सके। सच्चे साहित्यकारका यही लक्षण है कि उसके भावोमे व्यापकता हो, उसने विश्वकी आत्मासे ऐसी 'हारमोनी' प्राप्त कर ली हो, कि उसके भाव प्रत्येक प्राणीको अपने ही भाव मालूम हो।

साहित्यकार बहुधा अपने देश-कालसे प्रभावित होता है। जब कोई लहर देशमे उठती है, तो साहित्यकारके लिए उससे अविचलित रहना असभव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देश-बन्धुओके कष्टोसे विकल हो उठती है और इस तीव्र विकलतामे वह रो उठता है, पर उसके रुदनमे भी व्यापकता होती है। वह स्वदेशका होकर भी सार्वभौमिक रहता है। 'टाम काकाकी कुटिया' गुलामीकी प्रथासे व्यथित हृदयकी रचना है, पर आज उस प्रथाके उठ जाने पर भी उसमे वह व्यापकता है कि हम लोग भी उसे पढकर मुग्ध हो जाते है। सच्चा साहित्य कभी पुराना नही होता। वह सदा नया बना रहता है। दर्शन और विज्ञान समयकी गतिके अनुसार बदलते रहते है, पर साहित्य तो हृदयकी वस्तु है और मानव-हृदयमे तबदीलियाँ नही होती। हर्ष और विस्मय, क्रोध और द्वेष, आशा और भय, आज भी हमारे मन पर उसी तरह अधिकृत है, जैसे आदि कवि वाल्मीकिके समयमे थे और कदाचित् अनन्त तक रहेगे। रामायणका समय अब नही है, महाभारतका समय भी अतीत हो गया, पर ये ग्रन्थ अभी तक नये है। साहित्य ही सच्चा अितिहास है, क्योकि उसमे अपने देश और कालका जैसा चित्र होता है, वैसा कोरे इतिहासमे नही हो सकता। घटनाओकी तालिका इतिहास नही है, और न राजाओकी लडाइयाँ ही इतिहास है। इतिहास जीवनके विभिन्न अगोकी प्रगतिका नाम है, और जीवन पर साहित्यसे अधिक प्रकाश और कौन वस्तु डाल सकती है? क्योकि साहित्य अपने देश-कालका प्रतिबिम्ब होता है।

जीवनमे साहित्यकी उपयोगिताके विषयमे कभी-कभी सन्देह किया जाता है। कहा जाता है, जो स्वभावसे अच्छे है, वह अच्छे ही रहेगे, चाहे कुछ भी पढे। जो स्वभावसे बुरे है वे बुरे ही रहेगे, चाहे कुछ भी

पढे। इस कथनमे सत्यकी मात्रा बहुत कम है। इसे सत्य मान लेना मानव-चरित्रको बदल देना होगा। जो सुन्दर है, उसकी ओर मनुष्यका स्वाभाविक आकर्षण होता है। हम कितने ही पतित हो जायँ, पर असुन्दरकी ओर हमारा आकर्षण नही हो सकता। हम कर्म चाहे कितने ही बुरे करे, पर यह असम्भव है कि करुणा और दया, प्रेम और भक्तिका हमारे दिलो पर असर न हो। नादिरशाहसे ज्यादा निर्दयी मनुष्य और कौन हो सकता है—हमारा आशय दिल्लीमे कतलाम करानेवाले नादिरशाहसे है। अगर दिल्लीका कतलाम सत्य घटना है, तो नादिरशाहके निर्दय होनेमे कोई सन्देह नही रहता। उस समय आपको मालूम है, किस बातसे प्रभावित होकर उसने कतलामको बन्द करनेका हुक्म दिया था? दिल्लीके बादशाहका वजीर एक रसिक मनुष्य था। जब उसने देखा कि नादिरशाहका क्रोध किसी तरह शान्त नही होता और दिल्लीवालोके खूनकी नदी बहती चली जाती है, यहाँ तक कि खुद नादिरशाहके मुँहलगे अफसर भी उसके सामने आनेका साहस नही करते, तो वह हथेलियो पर जान रखकर नादिरशाहके पास पहुँचा और यह शेर पढा —

'कसे न माद कि दीगर ब तेगे नाज कुशी।
मगर कि जिन्दा कुनी खल्क रा व बाज कुशी।'

इसका अर्थ यह है कि तेरे प्रेमकी तलवारने अब किसीको जिन्दा न छोडा। अब तो तेरे लिए इसके सिवा और कोई उपाय नही है कि तू मुर्दोको फिर जिला दे और फिर उन्हें मारना शुरू करे। यह फारसीके एक प्रसिद्ध कविका शृगार-विषयक शेर है, पर इसे सुनकर कातिलके दिलमे मनुष्य जाग उठा। इस शेरने उसके हृदयके कोमल भागको स्पर्श कर दिया और कतलाम तुरन्त बन्द करा दिया गया। नेपोलियनके जीवनकी यह घटना भी प्रसिद्ध है, जब उसने एक अग्रेज मल्लाहको झाऊँकी नाव पर कैलेका समुद्र पार करते देखा। जब फ्रासीसी अपराधी मल्लाहको पकडकर नेपोलियनके सामने लाये और उसने पूछा—तू इस भगुर नौका पर क्यो समुद्र पार कर रहा था, तो अपराधीने कहा—इसलिए कि मेरी वृद्धा माता घर पर अकेली है, मै उसे एक बार देखना चाहता था। नेपोलियनकी आँखोमे आँसू छलछला आये। मनुष्यका कोमल भाग स्पन्दित हो उठा। उसने उस सैनिकको फ्रासीसी नौका पर इग्लेण्ड भेज दिया। मनुष्य स्वभावसे देवतुल्य है। जमानेके छल-प्रपच या और परिस्थितियोके वशीभूत होकर वह अपना देवत्व खो बैठता है। साहित्य इसी देवत्वको अपने स्थान पर

प्रतिष्ठित करनेकी चेष्टा करता है—उपदेशोंसे नही, नमीहतोंसे नही, भावोको स्पन्दित करके, मनके कोमल तारों पर चोट लगाकर, प्रकृतिमे सामजस्य उत्पन्न करके। हमारी सभ्यता साहित्य पर ही आधारित है। हम जो कुछ है, साहित्यके ही बनाये है। विश्वकी आत्माके अन्तर्गत भी राष्ट्र या देशकी एक आत्मा होती है। इसी आत्माकी प्रतिध्वनि है—साहित्य। योरपका साहित्य उठा लीजिए। आप वहाँ सघर्ष पायेगे। कही खूनी काण्डोका प्रदर्शन है, कही जासूसी कमालका। जैसे सारी सस्कृति उन्मत्त होकर मरुमे जल खोज रही है। उस साहित्यका परिणाम यही है कि वैयक्तिक स्वार्थपरायणता दिन-दिन बढती जाती है, अर्थ-लोलुपताकी कही सीमा नही, नित्य दगे, नित्य लडाइयाँ। प्रत्येक वस्तु स्वार्थके काँटे पर तौली जा रही है। यहाँ तक कि अब किसी युरोपियन महात्माका उपदेश सुनकर भी सन्देह होता है कि इसके परदेमे स्वार्थ न हो। साहित्य सामाजिक आदर्शोका स्रष्टा है। जब आदर्श ही भ्रष्ट हो गया, तो समाजके पतनमे बहुत दिन नही लगते। नयी सभ्यताका जीवन १५० सालसे अधिक नही, पर अभीसे ससार उससे तग आ गया है, पर इसके बदलेमे उसे कोई ऐसी वस्तु नही मिल रही है, जिसे वहाँ स्थापित कर सके। उसकी दशा उस मनुष्यकी-सी है, जो यह तो समझ रहा है कि वह जिस रास्ते पर जा रहा है वह ठीक रास्ता नही है, पर वह इतनी दूर जा चुका है कि अब लौटनेकी उसमे सामर्थ्य नही है। वह आगे ही जायगा। चाहे उधर कोई समुद्र ही क्यों न लहरे मार रहा हो। उसमे नैराश्यका हिंसक बल है, आशाकी उदार शक्ति नही। भारतीय साहित्यका आदर्श उसका त्याग और उत्सर्ग है। योरपका कोई व्यक्ति लखपति होकर, जायदाद खरीदकर, कम्पनियोमे हिस्से लेकर और ऊँची सोसायटीमे मिल कर अपनेको कृतकार्य समझता है। भारत अपनेको उस समय कृतकार्य समझता है, जब वह इस माया-बन्धनसे मुक्त हो जाता है, जब उसमे भोग और अधिकारका मोह नही रहता। किसी राष्ट्रकी सबसे मूल्यवान् सम्पत्ति उसके साहित्यिक आदर्श होते है। व्यास और वाल्मीकिने जिन आदर्शोकी सृष्टि की, वे आज भी भारतका सिर ऊँचा किये हुए है। राम अगर वाल्मीकिके साँचेमे न ढलते, तो राम न रहते। सीता भी उसी साँचेमे ढलकर सीता हुई। यह सत्य है कि हम सब ऐसे चरित्रोका निर्माण नही कर सकते, पर धनवन्तरिके होने पर भी ससारमे वैद्योकी आवश्यकता रही है और रहेगी।

ऐसा महान् दायित्व जिस वस्तु पर है, उसके निर्माताओका पद कुछ कम जिम्मेदारीका नही है। कलम हाथमे लेते ही हमारे सिर बडी भारी जिम्मेदारी आ जाती है। साधारणत युवावस्थामे हमारी निगाह पहले विध्वस करनेकी ओर उठ जाती है। हम सुधार करनेकी धुनमे अधाधुध शर चलाना शुरू करते है। खुदाई फौजदार वन जाते है। तुरन्त आँखे काले धब्बोकी ओर पहुँच जाती है। यथार्थवादके प्रवाहमे बहने लगते है। बुराइयोके नग्न चित्र खीचनेमे कलाकी कृतकार्यता समझते है। यह सत्य है कि कोई मकान गिराकर ही उसकी जगह नया मकान बनाया जाता है। पुराने ढकोसलो और बन्धनोको तोडनेकी जरूरत है, पर उसे साहित्य नही कह सकते। साहित्य तो वही है, जो साहित्यकी मर्यादाओंका पालन करे। हम अक्सर साहित्यका मर्म समझे बिना ही लिखना शुरू कर देते है। शायद हम समझते है कि मजेदार, चटपटी और ओजपूर्ण भाषा लिखना ही साहित्य है। भाषा भी साहित्यका एक अग है, पर स्थायी साहित्य विध्वस नही करता, निर्माण करता है। वह मानव-चरित्रकी कालिमाएँ नही दिखाता, उसकी उज्ज्वलताएँ दिखाता है। मकान गिरानेवाला इजीनियर नही कहलाता। इजीनियर तो निर्माण ही करता है। हममे जो युवक साहित्यको अपने जीवनका ध्येय बनाना चाहते है, उन्हे बहुत आत्मसयमकी आवश्यकता है, क्योकि वे अपनेको एक महान् पदके लिए तैयार कर रहे है, जो अदालतोमे बहस करने या कुरसी पर बैठकर मुकदमेका फैसला करनेसे कही ऊँचा है। उसके लिए केवल डिग्रियाँ और ऊँची शिक्षा काफी नही। चित्तकी साधना, सयम, सौंदर्य और तत्त्वके ज्ञानकी कही ज्यादा जरूरत है। साहित्यकारको आदर्शवादी होना चाहिये। भावोका परिमार्जन भी उतना ही वाछनीय है। जब तक हमारे साहित्यसेवी इस आदर्श तक नही पहुँचेगे, तब तक हमारे साहित्यसे मगलकी आशा नही की जा सकती। अमर साहित्यके निर्माता विलासी प्रकृतिके मनुष्य नही थे। वाल्मीकि और व्यास दोनो तपस्वी थे। सूर और तुलसी भी विलासिताके उपासक नही थे। कबीर भी तपस्वी ही थे। हमारा साहित्य अगर आज उन्नति नही करता, तो इसका कारण यह है कि हमने साहित्यरचनाके लिए कोई तैयारी नही की। दो-चार नुस्खे याद करके हकीम बन बैठे। साहित्यका उत्थान राष्ट्रका उत्थान है और हमारी ईश्वरसे यही याचना है कि हममे सच्चे साहित्य-सेवी उत्पन्न हो, सच्चे तपस्वी, सच्चे आत्मज्ञानी!

८

प्रेमचन्दजीकी कला

[श्री जैनेन्द्रकुमार]

[आपका जन्म सन् १९०५ मे अलीगढके एक साधारण परिवारमे हुआ। सातवी श्रेणी तक आप जैन गुरुकुल हस्तिनापुरमे पढे। फिर प्राइवेट मैट्रिक किया और कालिजमे भी आगे पढाई जारी रखी, लेकिन असहयोग आन्दोलनमे भाग लेने और जेल जानेके कारण पढाईका सिलसिला जारी न रह सका। आप एक सफल उपन्यास, कहानी और निवन्ध लेखक है। 'परख', 'त्यागपत्र' और 'सुनीता' आपके प्रसिद्ध उपन्यास है, 'वातायन', 'एक रात' और 'फाँसी' कहानी-सग्रह है, और 'जैनेन्द्रके विचार' नामकी पुस्तकमे आपके निवन्ध है।]

श्री प्रेमचन्दजीका उपन्यास 'गवन' जव निकला था तभी मैने उसे पढ लिया था। लेकिन जो मुझे वक्तव्य हो सकता है, वह लिखता अव हूँ। चीजको समझने और असरको ठडा होने देनेके लिए मैने कुछ समय ले लिया है। ठडा होकर वात कहना ठीक होता है,—जव व्यक्ति पुस्तकसे अपनेको अलहदा खडा करके मानो उस पर सर्वभक्षी निगाह डाल सके।

प्रेमचन्दजी हिन्दीके सवसे वडे लेखक है। हम हिन्दी भापा-भापी उनके मूल्यको ठीक आँक नही सकते। हम चित्रके इतने निकट है कि उसकी विविधता, उसका रग वैपम्य हमे आछन्न कर देता है, उसमे निवास करती हुई और उस चित्रको सजीवता प्रदान करती हुई एकता हमारी पकडमे नही आती। जो एकाध दशाब्दि अथवा एक दो भापाका अन्तर वीचमे डालकर प्रेमचन्दको देखेगे वे, मेरा अनुमान है, प्रेमचन्दको अधिक समझेगे, अधिक सराहेगे। वर्तमानकी अपेक्षा भविष्यमे और हिन्दीको छोडकर जहाँ अनुवादो द्वारा अन्य भापाओमे पहुँचेगे, वहाँ उनको विशेप सराहना प्राप्त होगी।

लेकिन यत्न द्वारा हम अपनी दृष्टिमे कुछ कुछ वैसी क्षमता ला सकते है कि वहुत पासकी चीजको मानो इतनी दूरसे देख सके कि वह हमे अपनी सपूर्णतामे, अपनी एकतामे दीखे। अगर रचनाओके भीतर पैठकर मानो

इस सीढीसे हम रचनाकारके हृदयमे पहुँच जायँ, जहाँसे कि उनकी रचनाओका उद्गम है और जहाँ उन्हे एकता प्राप्त होती है, तो हम रसमे डूब जायँ।

अपने भीतरके स्नेह, सहानुभूति और कौशलको विविध भाँतिसे कलमकी राह उतारकर कलाकारने तुम्हारे सामने ला रखा है। तुम उन शब्दो, भाषा, प्लाट और प्लाटके पात्रोका मानो सहारा-भर लेकर यदि हृदयमे से फूटते हुए झरने तक पहुँच जा सकते हो, तो वहाँ स्नान करके आनन्दित और धन्य हो जाओगे। नही तो, कालिजीय विद्वानकी तरह उसकी भाषाकी खूबी और त्रुटि और उसके व्याकरणकी निर्दोषता-सदोषतामे फँसे रहकर उसकी छानबीनका मजा ले सकते हो।

मुझे व्याकरणकी चिन्ता पढते समय बहुत नही रहती। भाषाकी चुस्तीका या शिथिलताका ध्यान उसीके ध्यानकी गरजसे मै नही रख पाता। भाषाकी खूबी या कमीको सपूर्ण वस्तुके मर्मके साथ उसका किसी न किसी प्रकार सामजस्य बैठाकर मै देख लेना चाहता हूँ। अत यह नही कि मै उस ओरसे नितान्त उदासीन या क्षमाशील हो रहता हूँ, किन्तु वहाँ समाप्त करके नही बैठ रहता।

प्रेमचन्दजीकी कलमकी धूम है। बेशक, वे धूमके लायक है। उनकी चुस्त दुरुस्त भाषा पर, उनके सुगठित वाक्यो पर मै किसीसे कम मुग्ध नही हूँ। बातको ऐसा सुलझाकर कहनेकी आदत—मै नही जानता, मैने और कही देखी है। बडीसे बडी बातको बहुत उलझनके अवसर पर ऐसे सुलझाकर, थोडेसे शब्दोमे भरकर कुछ इस तरहसे कह जाते है, जैसे यह गूढ, गहरी, अप्रत्यक्ष बात उनके लिए नित्यप्रति घरेलू व्यवहारकी जानी-पहचानी चीज हो। इस तरह जगह जगह उनकी रचनाओमे ऐसे वाक्याश बिखरे पडे है, जिन्हे जी चाहता है कि आदमी कठस्थ कर ले। उनमे ऐसा कुछ अनुभवका मर्म भरा रहता है।

प्रेमचन्दजी तत्त्वकी उलझन खोलनेका काम भी करते थे, और वह भी सफाई और सहजपनके साथ। उनकी भाषाका क्षेत्र व्यापक है, उनकी कलम सब जगह पहुँचती है। लेकिन अँधेरेसे अँधेरेमे भी वह धोखा नही देती। वह वहाँ भी सरलतासे अपना मार्ग बनाती चली जाती है। सुदर्शनजी और कौशिकजीकी कलम बडे मजेमे चलती है, लेकिन जैसे वह सडको पर चलती है, उलझनोसे भरे विश्लेषणके जगलमे भी उसी तरह सफाईसे अपना रास्ता काटती हुई चली चलेगी, इसका मुझे परिचय नही है।

स्पष्टताके मैदानमे प्रेमचन्द सहज अविजेय है। उनकी बात निर्णीत, खुली, निश्चित होती है। अपने पात्रोको भी सुस्पष्ट, चारो ओरसे सपूर्ण बनाकर वे सामने लाते है। उनकी पूरी मूर्ति सामने आ जाती है। अपने पात्रोकी भावनाओके उत्थान-पतन, घात-प्रतिघातका पूरा पूरा नकशा वे पाठकके सामने रख देते है। तद्गत कारण, परिणाम, उसका औचित्य, उसकी अनिवार्यता आदिके सबधमे पाठकके हृदयमे सशयकी गुजाइश नही रह जाती। इसलिए कोई वस्तु उनकी रचनामे ऐसी नही आती जिसे अस्वाभाविक कहनेको जी चाहे, जिस पर विस्मय हो, प्रीति हो, बलात् श्रद्धा हो। सबका परिपाक इस तरह क्रमिक होता है, ऐसा लगता है कि मानो बिल्कुल अवश्यभावी है। अपने पाठकके साथ मानो वे अपने भेदको बॉटते चलते है। अग्रेजीमे यो कहेगे कि वह पाठकको कॉन्फीडेसमे, विश्वासमे ले लेते है। अमुक पात्र अब क्यों ऐसी अवस्थामे है—पाठक इस बारेमे असमजसमे नही रहने दिया जाता। सब कुछ उसे खोल-खोलकर बतला दिया जाता है। इस तरह पाठक सहज रूपमे पुस्तककी कहानीके साथ आगे बढता जाता है, इसमे उसे अपनी ओरसे बुद्धिप्रयोगकी आवश्यकता नही होती,—पात्रोके साथ मानो उसकी सहज जान-पहचान रहती है। इसलिए पुस्तकमे ऐसा स्थल नही आता जहॉ पाठक अनुभव करे कि वह पात्रके साथ नही चल रहा है, जरा रुककर उनके साथ हो ले। वह पुस्तक पढनेको जरा थामकर अपनेको सँभालनेकी जरूरतमे नही पडता। ऐसा स्थल नही आता जहॉ आह खीचकर वह पुस्तकको बन्द करके पटक दे और कुछ देर ऑसू ढालने और पोछनेमे उसे लगाना पडे, और फिर तुरन्त ही फिर पढना शुरू कर दे। पाठक बडी दिलचस्पीके साथ पुस्तक पढता है और उसके इतने साथ-साथ होकर चलता है कि कभी उसके जीको जोरका आघात नही लगता, जो बरबस उसे रुला दे।

'गबन' मे मार्मिक स्थल कम नही है, पर प्रेमचन्दजी ऐसे विश्वास, ऐसी मैत्री और परिचयके साथ सब कुछ बतलाते हुए पाठकको वहॉ तक ले जाते है कि उसे धक्का-सा कुछ भी नही लगता। वह सारे रास्ते-भर प्रसन्न होता हुआ चलता है और अपने साथी ग्रथकारकी जानकारी पर, कुशलता पर और उसके अपने प्रति विश्वास पर जगह जगह मुग्ध हो जाता है। पग-पग पर उसे पता चलता रहता है कि इस कहानीके स्वर्गमे मे उसका हाथ पकडकर ले जाता हुआ उसका पथप्रदर्शक बडा सहृदय और विलक्षण पुरुष है। पाठक बिलकुल उसका होकर रहनेको तैयार होता है। वह बहुत

सतर्क और उद्‌बुद्ध होकर नही चलता, क्योकि उसे भरोसा रहता है कि ग्रथकार उसे छोडकर इधर उधर भाग नही जायगा, उसको साथ लिये चलेगा। इसलिए ग्रथकारको भागकर छूनेका अभ्यास करके उसके साथ रहने और इस प्रकार, अपरिचित रास्ते पर झटको-धक्कोको खाते, कभी उन पर हँसते और कभी रोते हुए चलनेका मजा पाठकको नही मिलता, पर पाठक स्वादको भी चाहता है।

मैं 'गबन' पढते हुए कही रो नही पडा। रवीन्द्रकी एकाध किताब पढनेमे, बकिम पढनेमे, शरत पढनेमे कई बार बरबस आँखोमे आँसू आये है। फिर भी प्रेमचन्दकी कृतियोसे जान पडता है कि मै उनके निकट आ जाता हूँ, उन पर विश्वास करने लगता हूँ। शरत पढते हुए कई बार गुस्सेमे मैने उसकी कृतियोको पटक दिया है और रोते रोते उसे कोसनेको जी किया है। 'कमबख्त न जाने हमे कितना और तग करेगा!' इस भावसे फिर उनकी पुस्तक उठाकर पढना शुरू कर दी है। ऐसा मेरे साथ हुआ है। इसके प्रतिकूल, प्रेमचन्दजीकी कृतियोसे उनके प्रति अनजाने सम्मान और परिचयका भाव उत्पन्न होता है।

शरत और कई अन्यकी रचनाएँ पढते वक्त जान पडता है, जैसे इनके लेखक हमसे परिचय बनाना नही चाहते, हमारी — अर्थात् पाठककी इन्हे बिलकुल परवाह नही है। हमारे भावोकी रक्षा करनेकी इन्हे बिलकुल चिन्ता नही है, जैसे हमारा जी दुखता है या नही दुखता, हम नाराज होते है या खुश, हमे अच्छा लगता है या बुरा — इसका खयाल करनेका जरा भी दायित्व उन पर नही है। ये लेखक निरपेक्ष और निश्चित होकर हमे जी चाहे जितना रुला सकते है, परन्तु प्रेमचन्द हमारे प्रति निरपेक्ष नही हो सकते।

शायद इसी निरपेक्षकी आवश्यकताको विचार कर अग्रेजीकी उक्ति बन गई थी — Art for Art's sake (कला कलाके लिए)। किन्तु यह वचन मेरी समझमे सत्यको बहुत अधूरे ढगसे प्रकट करता है, या कहे सत्यको खोलकर प्रकट नही करता, उसे मानो बाँधकर, बन्द करनेकी चेष्टा करता है। मुझे कहना हो तो कहूँ, — Art for God's sake (कला परमात्माके लिए)।

रवीन्द्र आदि कृतिमे किसी एक स्थल पर उँगली रखकर कहना कठिन है कि 'कैसा अच्छा है!' शरतकी खूबी समझमे नही आती कि किस खास जगह है। एक एक वाक्य करके देखो तो कही कोई खास

बात नही दिखाई देती। इधर प्रेमचन्दका कहीसे कोई वाक्य उठा ले, मानो, स्वय सम्पूर्ण है — चुस्त, कसा हुआ, अर्थपूर्ण।

पहले ढगकी किताबको जी अकुलाएगा तभी हम उठकर देखनेको लग जाएँगे। चाहे कितनी बार पढी हो हमे नवीन-सी लगेगी। प्रेमचन्दकी किताब एक बार पढ लेने पर उसे फिर फिर पढनेकी तबीयत कम शेष रहती है।

मैंने कहा है, — Art for God's sake अर्थात्, परमात्माके प्रति, सत्यके प्रति कलाकारका दायित्व है। इसको जब कलाकार समझेगा तो पाएगा कि उसका अपने प्रति दायित्व है, इसलिए वह पाठक-समाजकी धारणाओकी ओरसे निरपेक्ष और निश्चित होकर, अपने प्रति सच्चा रहकर अपनेको प्रकट करता है। एक व्यक्ति, समाज या पुस्तकके पात्रकी भावनाओकी रक्षाके प्रति अत्यत आतुर हो उठनेका कलाकारको अधिकार नही है। इस सबधमे उसे अत्यत निरकुश होकर चलना पडता है। जिस प्रकार परमात्मा अपने विश्वका सचालन (हमारी-तुम्हारी परिमित समझके अनुसार) अत्यत निरकुश होकर करते है, विश्वको जरा-व्याधि, रोग-शोक और जन्म-मृत्युसे भरा बनाये रखते है। किसी खास व्यक्ति या समूहकी कोई विशेष चिन्ता करते नही मालूम होते — इतना होने पर भी वे परम दयालु है। उनकी दयालुता किसी विशेप वस्तु या प्राणीके अच्छा लगने न लगने पर निर्भर होकर नही रहती। वह इतनी मर्मगत, इतनी व्याप्त और इतनी वृहत् है कि उसका कार्य परिणमन हम छोटी बुद्धिवालोको निरकुश जँचता है। उसी, सबके पिता सिरजनहारके अनुरूप सर्जनका अधिकार रखनेवाले कलाकारको रहना पडता है। वह रचनामे अत्यत निरकुश होगा, किसीके प्रति उसमे विशेप ममताभाव है, ऐसा वह नही दिखला सकेगा। विद्वान पर मौत आएगी, उसे वह दिखला देगा, शठ समृद्धिवान बनता होगा तो उसे बनने देगा। फिर भी सहानुभूति और प्रेमसे उसका हृदय भरा होना ही चाहिये। वह सहानुभूति या स्नेह इतना उथला न हो कि छलकता फिरे।

ससारमे प्रकटमे दीखनेवाली निरकुशताके मार्गसे एक बृहत् सत्यकी लीला सपन्न हो रही है। हम नही जानते इसलिए रोते झीकते है। हम जिन छोटी-मोटी बातोको सिद्धात बनाकर काम चलाते है, उनकी ज्योकी त्यो रक्षा जब हमे होती नही दीखती, तब हम दु खी और अस्थिर होते है। इस तरह अपने अहम् ज्ञानको बीचमे डालकर हम जिस परमात्माका विश्वास

हमारे लिए सहज होना चाहिये था, उसीको अपने लिए दुष्प्राप्य और दुर्बोध्य वना लेते है। सवमे निवास करती हुई उसकी दयालुता हम नही देख पाते, इसलिए कहते है, 'वह है नही, है तो दयालु नही है, मनमाना (Capricious) है।' हमारा तर्क यह होता है—'हम भले मानस है, फिर भी गरीब है; इसलिए ईश्वर नही है, है तो ठीक नही है।' इसी तरह कलाकारकी कृतिमे किसी अन्तरतर सत्यको पाने और सपन्न करनेकी चेष्टा होती है। दुनियाकी वनाई धारणाओकी रक्षा करनेकी चिन्ता उसे नही होती। सदाचारके और अन्य भाँतिके अपने नियम-कानून वनाकर जीती रहनेवाली दुनिया अपनी सव धारणाओका समर्थन वहाँ पाये ही, ऐसा नही होने पाता। ऊपरके तर्कसे चलनेवाली दुनियाकी तुष्टिके लिए और उसके अहम्-समर्थनके लिए कलाकार नही लिखता। इसीसे कहा गया है कि Art for Art's sake—कला कलाके लिए। जिसका कि सपूर्ण शुद्ध रूप है Art for God's sake और जिसका अर्थ है कि कला अहवादी, वुद्धिवादी दुनियाको खुश करनेके लिए नही होती, वह God अर्थात् सत्यकी प्रतिष्ठाके लिए होती है। प्रेमचन्दजीमे उक्त प्रकारकी निरपेक्षता पूरे तौर पर नही आयी थी। वे पाठककी वरावर परवाह करते हुए चलते थे, और अपनी किसी वातसे सहसा दुनियाको धक्का नही देना चाहते थे। उन्होने कोशिश करके जिसे सुन्दर और शिवरूप समझा था, लोगोकी वर्तमान स्थितिको किसी विशेष गडवडमे न डालनेकी चिन्ता रखते हुए, वे उसीको लिखते थे। उनके पात्र अशरीरी नही होते, सूक्ष्म-शरीरी भी नही होते। वे अतर्क्य नही हो पाते। वे जो कुछ भी होते है, (Common sense) सामान्य साधारण वुद्धिके मार्गसे ही होते है। असाधारणता उनमे यदि प्रेमचन्द कही कुछ रखते भी थे, तो मानो साधारणताके मार्गने ही उसे प्राप्त और प्राप्य वना लेते थे। पाठकके दिलमे प्रेमचन्दजीके पात्रोंसे एक प्रकारका सतोष होता है, कोई गहरी वेचैनी नही जाग उठती, कोई गहरा खिचाव जो मित्रतासे आगे हो, एक गभीर तृप्ति जो सतोषसे गहरी हो, नही होती। प्रेमचन्दजी पाठकका मन रख लेते थे, अपना ही मन पाठकके सामने रख दे, यह नही करते थे।

मै फिर भी प्रेमचन्दजीको हिन्दीका नही, ससारका लेखक मानता हूँ। वहुत जल्दी ससार भी यह मान लेगा। क्यो?

सामयिकताको लाँघकर, मानो सामयिकताका आधार पकड गहरी उतरकर जो कृति जितनी ही सत्यके अनुरूप होकर चलती है, वह उतने ही

अशमे सर्वकालीन और सर्वदेशीय होती है——उतने ही अशमे वह कालको चुनौती देती हुई चिरजीवी और देश और भाषाकी परिधियोंको फाँदती हुई विश्वव्यापी हो जाती है।

सत् है एक, अर्थात् सत्य है ऐक्य। सपूर्ण सत्ताको सचेतन एकमय देखो, वही है परमात्मा। इस सनातन ऐक्यको पानेकी चेष्टाका नाम है 'प्रेम'। पर वह प्रेम सहज सपन्न नही होगा। यह जो चारो ओर लुभाती हुई, भरमाती हुई भिन्नता फैली है, उस सब लोभ, भ्रम और मायाके समुद्रमे आँख-कान मूँदकर गहरी डुबकी लगाकर पैठनेमे वह प्रेम कुछ कुछ दिखायी पड सकता है। इसके लिए गहरी साधनाकी आवश्यकता है। तो भी इस ऐक्यको पानेकी भूख भी प्राणीमे कम गहरी नही है। पर बहुत कुछ उसकी तृप्तिमे आडे आता है और वह भूख बहुत तरफसे परिमित, सकुचित और भूखी रहती है। तो क्या यह शरीर ही रुकावट बनकर सामने आता है? यह हमको सबसे एकाकार तो होने दे सकता ही नही, फिर भी इसकी सहायतासे ही हम आगे बढते है। स्त्री, माँ, भाई, बहिन, पिता आदि नातो द्वारा, जो इस शरीरके कारण बन जाते है, हम अपने प्रेमका विस्तार फैलाते है। वह प्रेम नाना स्थानो पर नाना रूपोमे प्रकट होता है। वह प्रेम तत्कालको पाकर जितना चिरस्थायी और शरीरके प्रतिबधको लाँघकर जितना अखिलव्यापी और सूक्ष्मजीवी होता है, और इस तरह——तात्क्षणिक स्थूल तृप्तिमे न जीकर वह जितना उत्सर्गजीवी होता है, उतना ही वह सत्यके अनुरूप अर्थात् शुद्ध, वास्तविक और आनन्दमय होता है। लेकिन काल और प्रदेशकी रेखाओसे घिरकर तो जीवकी जीवन यात्रा चलती है। इसलिए उसका प्रेम पूर्ण, निर्विकार, सत्यानुरूपी नही हो पाता। इस तरह व्यक्तिके जीवनमे सदा ही द्वद्व चलता है।

इस दृष्टिसे देखा जाय तो कलुषित, कुत्सित प्रेम कुछ नही होता। विस्तृत ऐक्यके जिस तल तक मनुष्य उठ आया है, उस तलसे नीचेकी चेष्टाएँ जब किसीमे देखता है, तो उसे कुत्सित आदि कहने लगता है।

तो नाना रूपिणी माया जब व्यक्तिको अन्य सबके प्रति एक प्रकारके विरोधसे उकसाकर उसे अहभावमे दृढ रखनेका आयोजन करती है, तब उसके भीतरका गुप्त सच्चिदानद इस आयोजनको तोड-फोडकर स्वय प्रतिष्ठित रहनेको सतत उत्सुक रहता है। यह द्वद्वावस्था ही जीवनकी चेष्टाका और उपन्यासका मूल है, यही साहित्य क्षेत्र है।

प्रेमचन्दजी इस द्वद्वावस्थाको अच्छी सूक्ष्म दृष्टि और सहानुभूतिके साथ चित्रित करते है और इस द्वद्वमे वह जिस निर्मल प्रेमभावकी प्रतिष्ठा करते है, वह देहातीत होता है, वह बीतते हुए क्षणके साथ मिटता नही। वह सेवामय प्रेम दुनियादारीकी, गलतफहमियोकी, अज्ञानताकी, विफलताकी, हीनताकी कितनी कठिनाइयोके साथ लडता-झगडता हुआ भी अक्षुण्ण और उत्सर्ग-तत्पर रहता और रह सकता है——इसका चित्र प्रेमचन्दजी सजीव करके उठा देते थे। वही सजीव प्रेम, अर्थात् सत्य जो स्वय टिकाऊ है, उनकी कृतिको भी चलते समयके साथ मरने नही देगा। मै कहता हूँ कि प्रेमचन्दजीने अपनी कृतिमे जो चिरस्थायी और कर्मशील प्रेमका बीज रख दिया है, वह सामयिक नही है, उसमे स्थायित्व है।

सामयिकतासे प्राण खीचकर कइयोने रचनाएँ की है, जो रगीन होकर सामने आ गई है, पर अगर आज वह हाथो-हाथ बिकती है, तो हमने देखा है कल वह मर भी जाती है। जो रचना शाश्वत सत्यके श्वाससे जितनी अनुप्राणित होगी, वह उतनी ही शाश्वत और अमर होगी। मायामे से रस खीचकर देश और कालके प्रति क्षण और प्रति पग बदलते जाते हुए आदर्शों और भावोको आधार बनाकर, सामयिकताकी लहर पर नाचती हुई जो कृति हमे लुभाने आती है, आज हमे लुभा ले सही, पर कल हमे ही उसकी याद भूल जाएगी, इसका हम विश्वास रखे।

प्रेमचन्दजीकी कृति सामयिकताकी परिधिको लाँघकर किसी न किसी हद तक विश्व और भविष्यकी ओर बढेगी। निस्सदेह उसमे ऐसा बीज है।

९

मृत्युका काव्य

[साने गुरुजी]

[आपका जन्म दिसम्बर सन् १८९९ मे हुआ और देहान्त जून सन् १९५० मे। आपने सन् १९२४ मे एम० ए० पास किया और देशसेवामे लग गये। कई बार आप जेल गए। हरिजनो और मजदूरोंके आप सच्चे हिमायती थे। पढरपुरके मदिरमे हरिजन-प्रवेश आपकी अथक कोशिशोका परिणाम है।

आपके लेख अनुभव और प्रत्यक्ष कार्यकी देन है, और इसीलिए वे बडे हृदयस्पर्शी है। हालमे ही आपके कुछ लेख 'भारतीय सस्कृति' नामक पुस्तकमे छपे है।]

भारतीय सस्कृतिमे स्थान-स्थान पर मृत्युके सबधमे जो विचार है वे कितने मधुर है, कितने भव्य है! भारतीय सस्कृतिमे मृत्युकी भीषणता नही है। मृत्यु तो मानो जीवन-वृक्षमे लगा हुआ मधुर फल है। या मानो ईश्वरका ही एक स्वरूप है। जीवन और मृत्यु दोनो ही अत्यन्त मगल भाव है। जीवन और मरण वस्तुत. एकरूप ही है। रात्रिमे से ही आखिर अरुणोदय होता है और अरुणोदयमे ही अन्तमे रात्रिका निर्माण होता हे। जीवनमे मृत्युका फल लगता है, मृत्युमे जीवनका।

गीतामे कहा गया है कि मरना मानो वस्त्र उतार फेकना है। काम करते-करते ये वस्त्र जीर्ण हो गये, फट गये! वह त्रिभुवनकी माता हमे नये वस्त्र लेनेके लिए बुलाती है। वह हमे उठा लेती है। फिर हमे नये कुरते-टोपी पहनाकर इस ससारके प्राङ्गणमे खेलनेके लिए छोड देती है और दूरसे तमाशा देखती है। कभी-कभी जीव जन्म लेनेके पहले ही मर जाता है। कोई बाल्यावस्थामे मरता है, कोई युवावस्थामे। माँ कपडे पहनाकर भेज देती है, लेकिन उसे कपडा अच्छा नही लगा है, तो जल्दी ही वह उसे वापस बुला लेती है और नये कपडे पहना देती है। माँके शौक अमूल्य है!

हमारी माँ कोई भिखारिन नही है। उसका भण्डार तो अनन्त वस्त्रोंसे भरा हुआ है। लेकिन चूँकि माँका भडार भरा है अत हम उसके दिये हुए

कपड़े फाड दे यह अच्छा नही है। हमे जहाँ तक सम्भव हो वडी सावधानीके साथ इस कपडेका उपयोग करना चाहिए। हमे उसे स्वच्छ पवित्र रखना चाहिए और सेवा करते-करते ही उसे फटने देना चाहिए।

देह मानो मटका है। यदि कोई मर जाता है तो हम उसके आगे मटका ले जाते है। यह तो मटका था, फूट गया। इसमे रोनेकी कौनसी वात है? यह मटका तो सेवा करनेके लिए मिला था। महान् ध्येय-वृक्षमे पानी डालनेके लिए यह मटका मिला था। किसीका मटका छोटा होता है किसीका वडा। वह महान् कुम्हार अनेक प्रकारके ये मटके बनाता है और ससारका बगीचा तैयार करना चाहता है। वह फूटे हुए मटकोको फिर ठीक करता है। वह मटका फिर पानी पिलाने लगता है। इस प्रकारका क्रम चल रहा है।

विक्टर ह्यूगोने एक स्थान पर लिखा है—"मनुष्य क्या है? यह तो मिट्टीका गोला है, लेकिन उसमे एक दैवी कला है। उस दैवी कलाके कारण ही इस मिट्टीके गोलेका महत्त्व है।"

विश्वभर भगवान एक मिट्टीका गोला वदलकर दूसरा तैयार करता है। वह दैवी कलासे विभूषित कर उसे फिर इस ससारमे भेजता है। जिस प्रकार पतगके फट जाने पर छोटे वच्चे कागज लेकर दूसरी पतग वना लेते है वैसी यह वात है। भगवान जीव-रूपी पतगको किसी अदृश्य छतपर वैठकर लगातार उडा रहा है। वह उसे ऊपर-नीचे खीच रहा है। यदि पतग फट जाती है तो वह फिर उसे ठीक कर देता है। नया कागज और नया रग! वह फिर उसे उडाता है। अनेक रग, अनेक आकार, अनेक धर्म, अनेक वृत्तिकी ये करोडो पतगे हमेशा उड रही है, फट रही है और नयी आ रही है। यह है एक प्रचण्ड क्रीडा, एक विराट खेल!

मृत्यु मानो महायात्रा है, मृत्यु मानो महाप्रस्थान है, मृत्यु मानो महा-निद्रा है। हम प्रतिदिनके परिणामके वाद सो जाते है। नीद तो एक प्रकारका लघुमरण है। सारे जीवनके श्रमके वाद, अनेक वर्षोके श्रमके वाद भी हम इसी प्रकार नीद लेते है। प्रतिदिनकी नीद आठ घटेकी होती है, लेकिन फर्क यही है कि यह नीद लम्वी होती है।

मृत्युका अर्थ है मॉकी गोदमे जाकर सो जाना। छोटा वच्चा दिनभर खिलखिलाता है, रोता है, गिरता है। रात्रि होते ही मॉ उसे धीरेसे उठा लेती है। उसके खिलौने वही पडे रहते है। मॉ उसे गोदीमे लेकर मुला

देती है। माँकी गर्मी लेकर बच्चा ताजगी प्राप्त करता है और सुबह दुगने उत्साहसे खेलने लगता है। यही हाल जीवका है। ससारमे थके हुए जीवको वह माता उठा लेती है। बच्चेकी इच्छा न होने पर भी वह उसे उठा लेती है। अपने मित्रकी ओर, अपने सासारिक खिलौनोंकी ओर बालक आशा-भरी निगाहोसे देखने लगता है। लेकिन माँ तो बालकके हितको पहचानती है। उस रोते हुए बालकको वह ले लेती है, अपनी गोदमे सुला लेती है और जीवन-रस पिलाकर फिर भेज देती है।

मृत्यु मानो अपने पीहर जाना है। ससुरालमे गई हुई लडकी दो दिनके लिए घर जाती है और फिर प्रेम, उत्साह, आनन्द और स्वतत्रता प्राप्त करके आ जाती है। उसी प्रकार उस जगत्-माताके पास जाकर आना ही मृत्यु है। बचपनमे स्कूलमे जानेवाले बालक बीचमे ही लौटकर घर आ जाते हैं। पानी पीनेका बहाना, भूखका बहाना, बीमारीका बहाना करके घर आ जाते हैं। उन्हे माँके मुखचन्द्रको देखनेकी व्याकुलता रहती है। उन्हे माँके प्रेमकी भूख रहती है। माँ उन्हे प्रेमसे देखती है। उनकी पीठपर हाथ फेरती है। उन्हे मिठाई देती है और कहती है 'जाओ'। बच्चा हँसते-खेलते फिर प्रसन्नतापूर्वक स्कूलमे आ जाता है और पाठ याद करने लगता है। उसी प्रकार हम ससारके स्कूलसे घबराये एव चिढे हुए जीव माँके मुखचन्द्रको देखनेकी आशा लगाये रखते हैं। वे माँके पास जाते है, भरपूर प्रेम-रस पीकर फिर विद्या पढने लगते हैं।

मृत्यु मानो विश्राम है। मृत्यु मानो अनन्तमे स्नान करना है। थके हुए, घबराये हुए लोग ग्रामके बाहरके तालाब पर जाकर तैर आते हैं, समुद्रमे गोता लगा आते है, नदीके पानीमे नाच-कूद आते हैं। उनकी थकान मिट जाती है। जीवनमे डूबनेसे जीवन प्राप्त होता है। मृत्युका क्या मतलब है? डुबकी लगाना। ससारमे थके हुए जीव अनन्त जीवनके समुद्रमे गोता लगा आते हैं। यह गोता लगानेके लिए जाना ही मृत्यु है। यह एक प्रकारकी छुट्टी है। मृत्युका अर्थ है अनन्त जीवनमे तैरनेके लिए प्राप्त हुई छुट्टी। उस जीवनमे नहा-धोकर फिर ताजगी प्राप्त करके हम ससारमे कर्म करनेके लिए आ जाते है।

महादेवजीके ऊँचे शिखरवाले मन्दिरमे जानेके लिए सीढियाँ बनी रहती है। उसी प्रकार पूर्णताके शिखरकी ओर जानेके लिए जन्म-मरणके पैर रखकर जीव जाता है। मरण मानो एक कदम ही है। मरण मानो प्रगति ही है। मरणका अर्थ है आगे जाना। भगवानकी ओर ले जानेवाली सीढियोको

हम प्रणाम करते हैं। हमे वे सीढिया पवित्र लगती है, ध्येय-साधन प्रतीत होती है। उसी प्रकार मृत्यु भी पवित्र और मगल है। वह अपने ध्येयके पास ले जानेवाली है।

मरण मानो एक प्रकारका विस्मरण है। ससारमे स्मरण जितना ही विस्मरणका भी महत्त्व है। जन्म लेनेके बादमे हमने जो-जो बाते की, जो-जो सुना, जो-जो देखा, जो-जो हमारे मनमे आया यदि उन सबका हमे हमेशा स्मरण रहे तो कितना बडा बोझ हो जायगा! उस प्रचण्ड पर्वतके नीचे हम कुचल जायँगे। यह जीवन असह्य हो जायगा।

जिस प्रकार व्यापारी हजारो धन्धे करता है, लेकिन अन्तमे इस सरल-सी बातको ही ध्यानमे रखता है कि इतना लाभ हुआ या इतनी हानि हुई! यही हाल जीवनका है। मरण मानो जीवनके व्यापारमे लाभ-हानि देखनेका क्षण है। साठ-सत्तर वर्षोसे दुकान चल रही है। उसके हिसाब-किताब देखनेका क्षण ही मृत्यु है। उस लाभ-हानिके अनुभवसे लाभ उठाकर हम फिर दुकान लगाते है। माँकी आज्ञा लेकर फिर व्यापार आरभ करते है। प्रेमसे भरी हुई स्वतत्रता देनेवाली माँ कभी कोई प्रतिबध नही लगाती।

मृत्युकी बडी आवश्यकता होती है। कभी ससारमे इस वर्तमान नाम और रूपका समाप्त होना इष्ट और आवश्यक होता है। मानो कि कोई दुर्व्यवहार कर रहा था। बादमे उस पर यदि वह पश्चात्ताप करके सद्व्यवहार करने लगे, तब भी जनता उसकी पिछली काली करतूतोंको नही भूलती। लोग कहते है, "वह फलॉ व्यक्ति है न? उसकी सब बाते मालूम है हमको। 'सौ-सौ चूहे खायके बिल्ली चली हज्जको।' वह तो बेकार ढोग करता है। वह फिर अपनी पुरानी बाते पकड लेगा। उसे पश्चात्ताप कैसा?" लोगोके ये उद्गार अपना सुधार करनेकी इच्छा रखनेवाले उस पश्चात्तापकी ज्वालामे जलनेवाले व्यक्तिके मर्मको स्पर्श करते है। वह तो अपनी पुरानी बाते भूलना चाहता है, लेकिन ससार उसे भूलने नही देता। ऐसे अवसर पर पर्देके पीछे जाकर नया रग और नया रूप प्राप्त करके ही लोगोके सामने आना अच्छा रहता है।

यदि मृत्यु न होती तो ससार कुरूप दिखाई देता। मृत्युके कारण ही ससारमे सुन्दरता है। मृत्युके कारण ही ससारमे प्रेम है। यदि हम अमर होते तो एक-दूसरेकी बात भी नही पूछते। हम सब पत्थरो जैसे दूर-दूर

पडे रहते। मनुष्य मनमे विचार करता है कि कल तो हमे जाना पडेगा, फिर दुर्व्यवहार क्यो करे और वह अपना व्यवहार मधुर बनाता है। अग्रेजी भाषामे एक कविता है। दु खी भाई कहता है—"मेरा भाई कहाँ है? क्या मै अब अकेला ही खेलूं? अकेला ही नदी किनारे घूमूं? तितलियोके पीछे भागूं? मेरा भाई कहाँ है? यदि मै उसके जीवनकालमे उसे प्यार करता तो कितना अच्छा रहता! लेकिन अब क्या?"

मृत्यु उपकार करनेवाली है। जो काम जीवनमे नही होता, वह कभी-कभी मृत्युसे हो जाता है। सभाजी महाराजके जीवनकालमे मराठोमे फूट पड गई। लेकिन उनके महान मरणसे मराठोमे एकता स्थापित हो गई। वह मृत्यु ही मानो अमृत सिद्ध हो गई। ईसाके जीवनमे जो नही हुआ, वह उनके सूली पर जानेसे हो गया। मृत्युमे अनन्त जीवन होता है।

हम ऐसा समझते है कि मृत्यु मानो अँधेरा है। लेकिन मृत्यु तो अमर प्रकाश है। मृत्युका अर्थ है निर्वाण अर्थात् अनन्त जीवन मुलगा देना। भगवान बुद्ध कहते थे—अपना निर्वाण कीजिये, तभी ससारके साथ सच्चा प्रेम करना आ सकेगा। अपनेको भूल जाओ। अपनी वैयक्तिक आशा-आकाक्षा, क्षुद्र स्वार्थ, लोभ भूल जाओ। तभी सच्चा अमर जीवन प्राप्त कर सकोगे। अपनी सारी आसक्ति भूलना, अपने शरीरकी, मनकी, इन्द्रियोकी स्वार्थी वासनाओंको भूलना ही मानो मृत्यु है। इस मृत्युका हम इस जीवनमे भी अनुभव प्राप्त कर सकते है। जिस प्रकार नारियलका पानी सूख जाने पर नारियलकी गिरी अलग हो जानेसे जैसा खड-खड बजता है, उसी प्रकार देहेन्द्रियोसे आत्माको अलग करके व्यवहार करना ही मानो मृत्यु है। तुका-राम महाराज इसीलिए कहा करते थे—

अपनी आँखो ही मैने तो
अपनी मृत्यु देख ली है।
अनुपम था मेरा सुख-सुहाग!

जो एक बार इस मृत्युका अनुभव कर लेता है उसकी फिर मृत्यु नही होती। जीवित होते हुए भी जो मरना सीखता है, वह चिरजीव होता है।

जर्मनमे एक प्रसिद्ध दन्तकथा है। एक राक्षस है। भगवानने उस दैत्यको यह शाप दे दिया है कि तू कभी नही मरेगा। यदि वह राक्षस हमारे देशमे होता तो वह इसे वरदान समझता। उसने कहा होता कि कभी न

मरना तो अधिक सौभाग्यकी बात होती, लेकिन जर्मन-देशका वह राक्षस परेशान हो गया। उसे जीवनसे नफरत हो गई है। वह चाहता है कि रोजमर्राके एक-जैसे जीवनको वह भूल जाय। वह चाहता है कि अपने शरीरको भूल जाय। उसकी आत्मा यह चाहती है कि उससे चिपटा हुआ यह देहरूपी मिट्टीका गोला गिर जाय। वह चाहता है कि यह देह-रूपी चोला, यह शरीरका भार कभी-न-कभी गिर जाय, लेकिन उसकी मृत्यु नही होती। वह ऊँचे शिखरसे अपनेको नीचे गिरा देता है। लेकिन वह गेंद जैसा ऊपर उछल जाता है। अग्नि उसे नही जला पाती। पानी उसे डुबो नही पाता। फाँसी उसके लिए हार बन जाती है। विष अमृत बन जाता है। भगवानका नाम सुनते ही वह दाँत पीसने लगता है, अँगुलियाँ मोडने लगता है। उसके हृदयमे होली जलने लगती है। लेकिन इस होलीको शान्त करनेवाले मृत्युके मेघ बरसते नही है। उस दयनीय राक्षसकी दुरवस्थाका अन्त नही होता। उसे मृत्युका सौभाग्य प्राप्त नही होता।

यह दशा कितनी असह्य है! यदि मृत्यु देनेवाले ईश्वरका हम कितना ही आभार माने तो भी वह पर्याप्त नही होता! मृत्यु मानो जीव और ईश्वरका रहस्य है। मरण जीवनकी तहमे बैठ जानेवाला कीचड है। मरणका अर्थ है पुनर्जन्म।

हमे अमावस्याके दिन अँधेरा दिखाई देता है। ऐसा प्रतीत होता हे कि चन्द्रमा नही हे। लेकिन समुद्रमे ज्वार अमावस्याके ही दिन आता है।

अमावस्याके दिन सूर्य चन्द्रकी भेट होती है। चन्द्र सूर्यसे एकरूप हो जाता है। इसी प्रकार मृत्यु मानो जीवनकी अमावस्या है। जीव ईश्वरसे मिल जाता है। वह विश्वभरमे विलीन हो जाता है। अमावस्याके दिन सबसे बडा ज्वार आता है। उसी प्रकार मृत्युका अर्थ है अनन्त जीवनमे विलीन हो जाना। मृत्युकी अमावस्या मानो जीवनकी बडी पूर्णिमा हे।

देशबधु दासने मृत्युके समय एक बडी सुन्दर कविता लिखी थी। उसमे वे कहते है—"प्रभो, मेरे ज्ञानाभिमानकी गठरी मेरे सिरसे उतार ले। मेरी पुण्योकी गठरी मेरे कन्धोसे नीचे उतार ले। इस बोझको उठाते-उठाते मै अब जीर्ण-शीर्ण हो गया हूँ। मुझमे जान नही है। मै निरतर जोर-जोरसे हाँफ रहा हूँ। मै पद-पद पर हाँफता हूँ। मेरी आँखोके सामने अँधेरा छा रहा है। मेरे इस बोझको उतार।"

"जिसके सिर पर मोरमुकुट है, हाथोमे बाँसुरी है, उस राधारमण श्यामसुन्दर गोपालको देखनेके लिए मेरे प्राण व्याकुल है।"

"अब वेदकी आवश्यकता नही है। वेदान्तकी आवश्यकता नही है। अब तो सब कुछ भूल जाने दो। अब मुझे आपका वह अनन्त राज्य दिखाई दे रहा है। प्रभो, मै तेरे कुजके द्वार पर आ गया हूँ। मै अपने प्रिय द्वार पर आ गया हूँ। अपने निर्वाणोन्मुख दीपकको प्रज्वलित करनेके लिए मै तेरे द्वार पर आया हूँ।"

मृत्युका अर्थ है रिक्त दीपकमे फिर तेल भरना, अखण्ड दीपको फिरसे प्रज्वलित करना। प्रकाश प्राप्त करनेके लिए जाना ही मृत्यु है। यह कल्पना कितनी सहृदय है? जीवनसे नफरत नही। सेवाका आलस्य नही।

कहत तुकाराम हे भगवन्
हमे जन्म दे, दे फिर जीवन!

सन्त यही माँग करते है। वे इस अनन्त ससारमे बार-बार खेलनेके लिए आते है। वे बडे धैर्यशाली खिलाडी होते है।

भारतीय सस्कृतिमे मृत्यु अमर आशावाद है। भारतीय सस्कृति जैसी कोई आशावादी सस्कृति नही है। मृत्युके बाद आप फिर खेलनेके लिए आयेगे। रात्रिमे सोया हुआ बालक फिर पहलेवाले खिलौनेसे ही खेलता है। उसी प्रकार हम भी मृत्युके बाद फिर पहले-जैसी बाते शुरू करते है। जिस प्रकार बुनकर पहले दिन बुने हुए आधे थानको फिर बुनने लगता है। वही बात हम करते है। हमे पहलेकी सब बाते धीरे-धीरे याद आती है। पहलेका ज्ञान भी हमे मिल जाता है। पहलेके अनुभव भी मिल जाते है। पूर्वजन्मकी दूसरी सब बाते विस्मृत कर देते है, लेकिन ज्ञानानुभवका अर्थ हमारे पास रहता है। पूर्वजन्मका सार ग्रहण करके हम नवीन जीवन प्राप्त करते है।

भारतीय सस्कृति इस प्रकार आशावाद प्रकट करती है—"कुछ भी व्यर्थ नही जाता। आशासे काम कर, धीरे-धीरे तुझे पूर्णता प्राप्त हो जायगी। जो धीर है वह गभीर है। मृत्यु मानो फिर नवीन शक्तिसे, नवीन उत्साहसे ध्येय-प्राप्तिकी तैयारी है।"

मरणका अर्थ है जबरदस्ती अनासक्ति सिखाना। उपनिषद् कहते है—"तेन त्यक्तेन भुजीथा।" अरे भाई, ससारमे दूसरोका अभाव मिटा दे और फिर स्वय उपभोग कर। लेकिन हम इस आदेशको भूल जाते है। हम भण्डार भर लेते है, अपने नामसे पैसा जमा करते है। पडोसी दुखी दुनिया मरती रहती है और जीवका उद्धार करनेवाली मृत्यु आ जाती है। इस सग्रहके कीचडसे जीवको ऊपर उठानेके लिए मृत्यु आती है। मृत्यु मानो माँके

मगल-हाथ है। वह हाथ है आसक्तिके कीचडमे सने हुए जीवनको धोकर स्वच्छ करनेवाले।

धूलि धूसरित है यह तन-मन
निज अमृत कर से धो दे भगवन्
मुला मुझे चरणोमे निशिदिन
भगवन् किसे कहूँ ? अब क्या कहूँ ?

इस प्रकारकी जीवकी हार्दिक पुकार होती है। ससारकी कोई भी अन्य वस्तु इस गन्दगीको दूर नही कर सकती। सैकडो मन्दिरोको तोडकर जमा की हुई सम्पत्तिके कीचडमे मुहम्मद गड गया था। मेढककी तरह वह उस कीचडमे उछलता-कूदता फिरता था। ईश्वरसे मनुष्यका यह अध पतन नही देखा गया। मुहम्मदको उठानेके लिए वह दौडा। वह रोने लगा, आसक्तिमय पसारा उससे छूटता नही था। लेकिन ईश्वरने उसे उठा ही लिया। उसे मृत्यु-रूपी साबुन लगाकर धोया।

मेरा यह मालिन्य, हे माँ,
तेरे बिना कौन धो सकता ?

जीवकी इस मलिनताको धोनेके लिए हाथमे अमृत लेकर आनेवाली जगज्जननीके बिना कौन समर्थ है ?

मृत्यु हमे सावधान करती है। यह बात स्पष्टतासे हमारी समझमे आ जाती है कि हमे सब कुछ छोडकर जाना है। मृत्युके समय मनुष्य गादीसे कम्बल पर उतार लिया जाता है। मतलब यह है कि भगवानके द्वार पर नम्र बनकर ही जाना चाहिए। सूईकी नोकमे से हाथी भले ही निकल जाय, लेकिन ससारको दीन-हीन बनाकर स्वय कुबेर बना हुआ और धनमदमे मतवाला मनुष्य भगवानके दरवाजेके अन्दर नही जा सकता।

"अर्ध खुला है स्वर्ग द्वार, पर
नरक द्वार तो सदा खुला।"

नरकमे तो इन लोगोकी मोटरे जा सकती है, लेकिन स्वर्गके तग मार्गसे दूसरोके लिए कष्ट-सहन करके हड्डीका ढाँचा बना हुआ मनुष्य ही जा सकता है।

भारतीय सस्कृति कहती है—"मरते समय तो कम-से-कम गादीसे नीचे आ जाओ। जब हम बाहर इधर उधर घूमते है, तब कोट-बूट पहनकर जाते है। उस समय सारी ऐठ हममे आ जाती है। लेकिन सन्ध्या समय

जब हम घर आकर तुलसीके पास आँगनमे बैठी हुई माँसे मिलनेके लिए जाते है तब दुपट्टा, कोट, साफा आदि खूँटी पर ही रखे रहते है। हम माँके पास नगे शरीर ही आ जाते है कि वह हमारे ऊपर अपना मगल हाथ फिराये। उसी प्रकार ससारमे घूम-फिर आनेके बाद जब जीवनके सन्ध्याकालमे हम उस महती मातासे मिलनेके लिए जाते है उस समय हमे नगे हो जाना चाहिए। उस समय हमे गहने और मूल्यवान कपडे दूर रख देने चाहिएँ। हमे केवल एक भक्ति-प्रेमका वैभव लेकर ही माँके पास जाना चाहिएँ।

लेकिन कभी-कभी नगे बदन माँसे मिलनेमे भी शरम आती है। दुर्योधनकी यह इच्छा थी कि माँकी दृष्टि उसके सारे शरीर पर पड जाय और वह अमर बन जाय, लेकिन उसे शर्म आ गई। उसने आखिर फूलोका वस्त्र पहन लिया। इससे उसका सारा शरीर तो अमर हो गया, लेकिन ढँकी हुई जघाएँ भीमकी गदासे चूर-चूर हो गई। माँके पास आड-पर्दा नही होना चाहिए। यदि अमर जीवन चाहते हो तो माँके पास बच्चे बनकर जाओ। आते समय तो तुम कम्बल पर आये थे। अब मरते समय भी कम्बल पर जाओ। जन्म लेते समय बालक और मरते समय भी बालक! अन्तर इतना ही है कि जन्म लेते ही माँसे दूर आ जानेके कारण रोये है। लेकिन अब मृत्युके समय फिर माँके पास जाना है इसलिए हसिये। जन्मके समय हम रोये और लोग हँसे। अब मरते समय हम हँसे और ऐसी बात करे कि लोग हमारी मधुर स्मृतिमे रोएँ।

हमने किस प्रकार जीवन बिताया इसकी परीक्षा ही मृत्यु है। तुम्हारी मृत्युसे तुम्हारे कामकी कीमत आँकी जायगी। जो मरते समय रोयेगा उसका जीवन रुदनपूर्ण ही समझना चाहिए। जो मरते समय हँसे उसका जीवन कृतार्थ समझना चाहिए। महापुरुषकी मृत्यु एक दिव्य वस्तु है। वे अनन्तके दर्शन है। उसमे कितनी शान्ति है, कितना समाधान!

सुकरात मरते समय अमृतत्वका स्वाद ले रहा था। मरते समय गेटेने कहा —'अधिक प्रकाश, अधिक प्रकाश!' तुकाराम महाराज 'राम-कृष्ण हरि' गाते-गाते ही मर गये। समर्थने कहा, 'क्यो रोते हो? मेरा 'दासबोध' तो है।' लोकमान्य 'यदा-यदा हि धर्मस्य' वाला श्लोक बोलते-बोलते ही चले गये। गाधीजी दोनो हाथ जोडे हुए 'हे राम' कहकर ससारसे विदा हुए।

ससारमे इस प्रकारके कितने ही महाप्रस्थान हो गये होगे। मृत्यु मानो शान्ति है। मृत्यु मानो नवजीवनका आरम्भ है। मृत्यु मानो आनन्दका दर्शन है। मृत्यु मानो पर्व है। वह आत्मा और परमात्माकी एकताका सगीत है। मरण मानो प्रियतमके पास जाना है।

कर ले सिगार चतुर अलबेली,
साजनके घर जाना होगा!
मट्टी ओढावन मट्टी बिछावन,
मट्टीमे मिल जाना होगा।।
नहा ले धो ले सीस गुंथा ले,
फिर वहाँसे नही आना होगा।।

यह गीत कितना सुन्दर है! इसके भाव कितने सुन्दर है! मरणका अर्थ है ससारसे वियोग, लेकिन जगदीश्वरसे मिलना। आत्मा और परमात्माका मिलन ही मृत्यु है। जब मनुष्य मर जाता है, तब हम उसको नये कपडे पहनाते है। उसे स्नान कराते है। उसे सजाते है। मानो वह विवाह जैसा मगल-कार्य हो। मरण मानो विवाह-मगल!

भारतीय सस्कृतिने मृत्युका डक काट फेककर उसको सुन्दर और मधुर बना दिया है। 'प्राणो मृत्यु' मृत्यु प्राण है इस प्रकारके सिद्धान्तकी स्थापना की गई है। मृत्यु मानो खेल है। मृत्यु मानो आनन्द है। मृत्यु मानो सेवा-निवृत्ति है। मृत्यु मानो पुराने वस्त्र निकालना है। मरण मानो चिर विवाह है।

जिस सस्कृतिने मृत्युको जीवन बना दिया उसके उपासकोमे आज मृत्युका अपार डर भरा हुआ है। उनको मृत्यु शब्द ही सहन नही होता। सब लोग केवल शरीरका ही लाड-प्यार करनेवाले बन गए है। जो महान ध्येयके लिए इस देहरूपी मटकीको हँसते-हँसते फोडनेके लिए तैयार हो, वे ही भारतीय सस्कृतिके सच्चे उपासक है। अपने चमडेसे ही प्यार करनेवाले भारतीय सस्कृतिके नामको सुशोभित नही करते। भारतके सारे दैन्य-दास्य और विषमय वैषम्यको दूर करनेके लिए देहका बलिदान करनेको जब लाखो युवक-युवतियाँ तैयार होगे, तभी भारतीय सस्कृतिकी सुगन्ध दिशा-दिशामे फैल जायगी और भारत नये तेजसे जगमगा उठेगा।

१०

सत्याग्रह और सर्वोदय

[काका कालेलकर]

[आप काकासाहबके नामसे मशहूर हैं। आपका पूरा नाम दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर हे। आपका जन्म सन् १८८५ मे सातारामे हुआ। आपने फर्ग्यूसन कालेजसे बी अे और वकालतकी परीक्षाये पास की, मगर आपने वकालत करना पसन्द नही किया और समाज-सेवामे लग गये।

आप उन लोगोमे से हैं जो गाधीजीके दक्षिण अफ्रीकासे वापिस हिंद आने पर देशसेवाकी धुनमे उनके साथ जुड गये। आपकी मातृभाषा मराठी है, पर आपका गुजराती पर खूब अधिकार हे और आपने गुजरातीमे भी काफी लिखा है। आप हिन्दी भाषाके अभ्यासी और समर्थ लेखक है। आप 'मगल प्रभात' मे हिन्दीमे लिखते रहते है।]

सत्याग्रह और सर्वोदय ये दो शब्द महात्मा गाधीके बनाये हुए है। दोनोका जन्म एक ही समय हुआ था। सत्याग्रह और सर्वोदय शब्द नही, महामत्र है। जब महात्माजी दक्षिण अफ्रीकासे हिन्दुस्तान आये, तब 'सत्याग्रह' शब्द लेकर आये और जब वे इस दुनियासे विदा हुए, तब 'सर्वोदय' शब्द हम सबके बीच छोडकर गये। गाधीजीने अपने जीवनमे जो कुछ भी किया, हमे सिखाया, अुस सबका सार सर्वोदय शब्दमे आ जाता है। सर्वोदय हमारा ध्येय है। सत्याग्रह और स्वदेशी अुसकी साधना है और अनासक्ति अुसका व्रत है।

मनुष्य-जातिका हित चाहनेवाले रस्किनकी एक किताब पढते पढते गाधीजीको सर्वोदय शब्द सूझा। उन्होने देखा कि पश्चिमके लोगोने आदर्शके तौर पर एक शब्द निकाला है — अर्थात् अधिकसे अधिक लोगोका अधिकसे अधिक हित करना, यही सामाजिक आदर्श हो सकता है। देखनेमे तो यह सूत्र अच्छा लगता है। ज्यादासे ज्यादा हित करना इससे बढकर और कौनसी भलाई हो सकती है? लेकिन इस सूत्रके मूलमे एक बडी अस्तिकारी नास्तिकता भरी पडी है। "बहुत लोगोको फायदा पहुँचाना हो, तो थोडे दुर्बलो पर अत्याचार करनेमे कोअी हर्ज नही है, बहुत सख्याके फायदेके लिए अल्पसख्यक दुर्बलोको जिबह करनेमे कोई गुनाह या पाप नही है और हो भी

तो उसकी शिकायत हो नही सकती।" यह हुआ उस सूत्रका अर्थ। इस हिसाबसे पाडवोंने एक द्रौपदीकी इज्जत सँभालनेके लिए अठारह अक्षौहिणी सेनाओको मरवा दिया। उसकी जगह एक द्रौपदीका अपमान सहन कर लेते, तो 'जिसकी लाठी उसकी भैस' का सिद्धात चरितार्थ हो जाता। अगर संख्याकी ओर ही न्याय झुक जाय, तो 'जिसकी लाठी उसकी भैस' यही बात मजूर करनी पडेगी। पश्चिमकी इस अमली जीवन-दृष्टिका विरोध करते हुए महात्माजीने कहा था कि "अधिकसे अधिक लोगोका नही, बल्कि सबका — बिना किसी अपवादके सबका भला, सबका उदय, सबका उत्कर्ष ही हमारा आदर्श हो सकता है।"

यह शुद्ध आदर्श हम अमलमे किस तरह लावे, इसकी कसोटी यही है कि जो सबसे छोटा है, सबसे पिछडा हुआ है, अज्ञानी, दुर्बल, उपेक्षित और दबा हुआ है उसकी ओर हम ज्यादा ध्यान दे। उसीको आगे लानेकी कोशिश सबसे पहले करे। सर्वोदयकी इस जीवन-दृष्टिकी बुनियादमे विश्व कुटुम्ब-भाव है। अगर हम हृदय विशाल करके सबको अपनाना सीखे, तो सर्वोदयकी सब बाते आप ही आप हमारे दिलमे उपज जायेगी। कुटुम्बमे सबसे बडे भाईको कहते है अग्रज और सबसे छोटेको अत्यज। आज हिन्दू समाजमे अग्रज कहते है ब्राह्मणको और अन्त्यज कहते है हरिजनोको। जिस तरह घरमे बडा भाई अपने सबसे छोटे भाईको प्यारसे बुलाता है, खाते-पीते और खुशी मनाते समय छोटे भाईको सबसे पहले याद करता है और हर तरहकी तकलीफमे उसकी मदद करता है, उसी तरह यदि अपनेको उच्च वर्णका माननेवाले लोग हरिजनोको अपनाएँगे और उनको आगे बढाएँगे, तो सर्वोदयका सिद्धात सामाजिक क्षेत्रमे स्थापित हो जायगा।

महाराष्ट्रके सत कवि तुकारामने एक ही वचनमे यह बात स्पष्ट की है —

"दया करणे जे पुत्रासी, तेचि दासा आणि दासी।
तोचि साधु ओळखावा, देव तेथे चि जाणावा॥"

अर्थात् 'जो प्रेम, दया और जो क्षमावृत्ति तुम आत्मीयताके कारण अपने लडके-लडकीके प्रति बताते हो, वही प्रेम और दया अगर अपने नौकर-चाकर, दास-दासीके प्रति भी रखोगे, तो तुम सत्य पुरुषोकी कोटिमे गिने जाओगे और भगवान तुम्हारे हृदयमे आ बसेगे।' सर्वोदयकी बुनियादमे कुटुम्बभाव है, उसमे जाति, वर्ण या वर्गका भेद नही है। दुनियामे जितने भी लोग है, सब भगवानके ही बच्चे है, एक ही घोसलेके परिन्दे है। अगर इनमे सच्चा

प्रेमभाव कायम रहे, तो एकके दुखसे दूसरा सुखी नही हो सकेगा। एककी अज्ञानताका फायदा दूसरा नही उठायेगा। हिसा, कपट, स्वार्थ और धोका वही चलता है, जहाँ हृदयमे अपनेपनकी एकता नही है।

हम लोग तिजारत करनेके लिए पूर्वी या दक्षिणी अफ्रीकामे जाते है। वहाँके हब्शी, जूलू और काफरा लोगोमे व्यापार करते है। उनको नोकर रखते है। बेशक उनका रग अलग है, उनकी भाषा अलग है, उनके रस्मो-रिवाज भी हमसे भिन्न है, तो क्या इसलिए वे हमारे भाई नही है? जरूर है। तो तिजारतके साथ हम उनकी सेवा क्यो न करे? अफ्रीकामे रहकर अगर हम अपने बच्चोकी शिक्षाका प्रबध करते है, तो साथ साथ उनके बच्चोंकी शिक्षाका प्रबध भी हमे करना चाहिये। बाजारमे और दुकानमे तो हम एक-दूसरेसे मिलते ही है, फिर हम उनके घर पर क्यो न जाये और उन्हे अपने घर पर क्यो न बुलावे? हृदय देना-लेना, सुख-दुखकी बाते कहना-पूछना, एक-दूसरेके घर पर खाना-खिलाना — ये प्रीतिके, आत्मीयताके छ लक्षण बताए गये है। जहाँ भी हम जाते है वहाँ अगर हम प्रेम धर्मका पालन करे, तो कही भी सघर्षके लिए जगह ही नही रहेगी।

अपनेको बडा और दूसरेको अपनेसे छोटा, तुच्छ समझना सर्वोदय वृत्तिका द्रोह है। जातिभेद और वर्णभेद सर्वोदय-वृत्तिमे गल जाते है। जहाँ मानवताका धर्म आया, वहाँ बाकीके सब धर्म उसमे समा जाते है। तिस पर भी कोई भेद बाकी रहे तो वे एकदम गौण हो जाते है, उनके लिए झगडा करना मनुष्यके लिए शर्मनाक मालूम होता है। हमारे समाजमे हरिजन जातियोके प्रति जो अन्याय हो रहा है, उसकी ओर लोगोका ध्यान अब ठीक ठीक ढगसे खीचा गया है। कानूनकी दृष्टिसे तो अस्पृश्यता दूर हो ही गई। नियतिकी बलिहारी कि जिन हरिजनोको हम हिन्दू धर्मका पतित अग मानते थे, उन्ही हरिजनोका एक समर्थ और विद्वान प्रतिनिधि हिन्दू-कोड जैसा महत्त्वपूर्ण कानून बना रहा है। अस्पृश्यता आज या कल दूर हो ही जायगी, इसमे मुझे तनिक भी शक नही। अब हमे आदिम जातियोकी ओर भी ध्यान देना चाहिये। वे अस्पृश्य तो नही मानी जाती है, लेकिन बेचारी है बहिष्कृत ही। हम उन्हे हिन्दू समाजसे बाहर रखे हुए है। जीवनमे असमान सघर्षमे वे कबके हारे हुए है। निराश हो चुके है। बस, प्राणीमात्रको कुदरतने जो जीनेकी इच्छा दी है, वही उन्हे जीवित रखती है। प्रगतिकी आशा तो वे बिलकुल छोड चुके है। उनके बीच जाके रहना, सेवा और सहानुभूति द्वारा उन्हे अपनाना, उन्हे हर तरहकी जीवनके लिए उपयोगी कला सिखाना यही सर्वोदयका काम है।

अगर हमारे देशमे सर्वोदय मिशनरी नही तैयार हुए, तो देखते देखते हमारा नाश होनेवाला है। अपने देशमे आज हम क्या देखते है? एक प्रातके लोग दूसरे प्रातके लोगोको पराये और दुश्मन मानते है। एक जातिके लोग दूसरी जातिके लोगोको सिर ऊँचा नही करने देते है। पूंजीपति मजदूरोको उनका हिस्सा राजी-खुशीसे नही देते है। इसीलिए मजदूरोको न्याय मिले, ऐसे कानून बनाने पडते है। मानव-जातिको प्रेम बधनमे बाँधनेके लिए ही जिनकी सृष्टि हुई है, ऐसे धर्म भी अपना असली धर्म भूलकर द्वेष और द्रोह फैला रहे है। ये सब सर्वोदयके नही सर्वनाशके लक्षण है। इसीलिए गाधीजीने सर्वधर्म-समभाव हमे सिखाया। दुनियामे जितने भी धर्म है, सब हमारे ही है, कोई पराया नही है। सबके प्रति एकसा आत्मीय भाव, आदर-भाव रखना चाहिए। जब सब धर्म अच्छे है, तब एक धर्म छोडकर दूसरे धर्ममे जानेकी कोई जरूरत नही है। यह जितना सही है, उतना ही यह भी सही है कि अगर किसीने धर्मातर किया भी, तो उसने कोई पाप नही किया। धर्मभेदके कारण किसीके साथ परायापन नही बरतना चाहिये। अगर हम गहराईमे उतरकर सोचे, तो हम देखेगे कि अलग अलग माने जानेवाले धर्म एक ही विराट विश्व-धर्मके विभिन्न पहलू है — "कोई नही है गैर, बाबा कोई नही है गैर।"

जब प्रेमशक्ति क्षीण होती है, आत्मीयता नष्ट होती है, तब स्वार्थ बढता है, ऐश-आराम ही सबसे अच्छा लगता है, दूसरोको दबा कर रखनेको जी चाहता है। इसीसे सब झगडे और युद्ध पैदा होते है। सादगीसे रहना, परिश्रमसे मुँह नही मोडना, स्वावलबन और स्वाश्रयसे जीवन बिताना, आस-पासके लोगोमे हिलमिल जाना, जिनकी सेवा लेते है उनके उद्धारके लिए हमेशा प्रयत्न करते रहना और सयमको चारित्र्यकी बुनियाद समझकर वासना पर विजय पाना यही सर्वोदयकी साधना है। किसी पर भी अन्याय होता हो, तो वह हमारा ही अन्याय है, ऐसा समझकर अन्याय-निवारणके लिए कमर कसना, यह भी सर्वोदयका ही एक महत्त्वका पहलू है। सर्वोदय बाहरी नियम-कानूनोकी ओर ध्यान नही देता है। आतरिक परिवर्तन, हृदय-शुद्धि और हृदय-समृद्धिका ही वह खयाल रखता है, क्योकि जिसके हृदयमे विश्व-बन्धुत्व आ गया, वह सब तरहसे अच्छे कानूनोका दिलसे पाबद हो जाता है। उसे किसी डर या लालचसे प्रेरित करना नही पडता। सर्वोदय ही सत्य युग है, स्वराज्य है और वही गाधीजीका रामराज्य है।

सारी दुनियाकी हालत देखकर एक बात स्पष्ट होती है कि अब हम एकागी प्रगति कर ही नही सकते। एक वर्ग, एक वंश, एक वर्ण या जाति अगर अपने ही स्वार्थका विचार करे, तो वह सबके प्रति सबसे बडा द्रोह है। अगर हमे धार्मिकता बढानी हो तो सिर्फ एक धर्मका अध्ययन करनेसे काम नही चलेगा। सब धर्मोको समझना होगा। उनमे जो मुख्य बाते है, वे सर्वत्र एकसी होती है। उनको स्वीकार करना होगा। सब धर्म सच्चे है, सब धर्म अच्छे है और सब धर्म मेरे है, यह वृत्ति है सर्वोदयकी। सर्व-धर्म-समभावको मान लिया, तो उसमे से सर्वधर्म-समभाव पैदा हो ही जाता है। सर्वोदयका पालन करनेके लिए हमने सर्व-सेवा-सघ स्थापित किया है। अगर हम सेवा करने निकले, तो हमे सबकी सेवा करनी चाहिए, और उसमे भी एक पहलू लेकर चलनेसे सफलता नही मिलेगी। सेवा समग्र जीवनकी ही हो सकती है। सर्व-सेवा-सघका यही अर्थ है। सेवा करनेवाले सब मिलकर सब तरहके लोगोकी सेवा और वह भी सब तरहकी सेवा करे, यही सर्वोदयका आदर्श हो सकता है।

हम सब एक-दूसरेके उद्धारके लिए एक-दूसरेसे बँधे हुए है। हम सब एक-दूसरेके है। हमारी जिम्मेदारी बँट नही सकती, यही है सर्वोदयका ज्ञान। अपनी शक्ति, वृत्ति और परिस्थितिके अनुसार एक एक पहलूको हम प्रधानता दे सकते है। पर दूसरे सब पहलुओका खयाल तो हमे रखना ही चाहिए। सर्वोदयके मानी है यथा प्रमाण सब पहलुओंका उदय, यानी उत्कर्ष। हमारे देशमे जातिभेद चलाकर हमने समाजके टुकडे टुकडे कर दिये है। दूसरी जातिका मनुष्य हमे पराया-सा लगता है। हमारे जातिके फड अपनी ही जातिके युवक-युवतियोको शिक्षा देनेका प्रबध करते है। फिर अन्य धर्मोके लोगोको अपनानेकी बात कौन करे? बुद्ध भगवानके शिष्य जब सेवा-कार्य करते थे, तब वे सब दिशाओके, सब तत्त्वोके कल्याणका सकल्प करके चलते थे। आजकल यह वृत्ति कुछ कुछ पारसियोमे दीख पडती है। वे अपनी जातिके लोगोके लिए कुछ कम नही करते है, लेकिन उनके दानका प्रवाह सबके हितके लिए बहता आया है।

हम अपने खान-पानमे, आमोद-प्रमोदमे और व्रत-त्योहारोमे सबको नही बुलाते है, यह हमारी बडी खामी है। इसमे मानवताका द्रोह होता है। आहार-शुद्धि और बीज-शुद्धिके नाम पर हम लोगोने ऊँच-नीच भावका ऐसा पाखड चलाया है कि गिरी हुई हालतमें भी हरएक जाति अपनेको औरोसे श्रेष्ठ मानती है और सबसे अलग ही रहती है। इस वृत्तिसे हमारा कुछ

भी हित नही हुआ है। न हम किसी दोपसे वचे है, न किसी गुणका विकास कर सके है। वन्धुभावसे जव हम एक-दूसरेके निकट परिचयमे आते है, तव एक-दूसरेके गुणोकी कदर करने लगते है, दोपोका कारण समझ सकते है। एक-दूसरेके सहवाससे ही हम अपने दोप पहचानकर उन्हे दूर करनेकी वृत्ति और शक्ति हासिल कर सकेगे। अलग अलग समाज वनाकर रहना हम छोड दे और आस्तिकता धारण करके सर्व समाजी वन जाय, तभी हम सही मानोमे आत्मोद्धार और सर्वोदय कर सकेगे।

भगवानने जव अर्जुनको विश्वरूपका दर्शन कराया, तव ही अर्जुन विश्वके सव पहलुओको एकत्र करके सपूर्ण और सर्वरूपमे देख सका। अनेक तरहसे वँटे हुए विश्वको एकत्र आया हुआ देखकर वह विस्मित हो गया और स्तुति करते करते कहने लगा —'सर्व समाप्नोपि ततोऽसि सर्व'। इसी शाश्वत धर्मगोप्ता सर्वेश्वरकी हमे सर्वसेवाके द्वारा सपूर्ण उपासना करनी है। जो एकागी है, वह खतरनाक है, जो सपूर्ण है, वही कल्याणकारी है। इसीलिए हम चाहते है सर्वसेवा, सर्वराज्य, सर्वसमभाव, सर्व-उपासना और सर्वोदय।

११

मिलन-मुहूर्त

[श्री गोविन्दवल्लभ पन्त]

[पतजी हिन्दीके माने हुए लेखक है। नाटककार, कहानी-लेखक और गीतकारके रूपमे भी आपने काफी सफलता प्राप्त की है। आप उत्तरप्रदेशके रहनेवाले है और दैवयोगसे वहाँके सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ गोविन्दवल्लभ पतके नामराशी भी है। पतजी सोलह आने साहित्य-सेवी है, राजनीतिसे आपका कोई सरोकार नही। 'वरमाला', 'राजमुकुट' और 'अगूरकी वेटी' आपके प्रसिद्ध नाटक है। 'एकादशी' कहानी-सग्रह है।]

वासवदत्ताका सौन्दर्य पूर्णचन्द्रसे भी अधिक पूर्ण था। उसकी देह कमलसे अधिक कोमल थी। उसकी वाणी वीणाका तिरस्कार करती थी। उसकी लाजभरी आँखे हरिणीको लजा सकती थी। स्वर्गके सौन्दर्यने अपनी रुचिके अनुसार अपने ही कोमल हाथोसे उस सजीव स्वर्ण-प्रतिमाको निर्मित किया था। ऐसी भुवन-मोहिनी शोभा, ऐसी रुचिर रूपराशि देकर भी क्या विधाताको उसे वेश्या वनाना उचित था? कीचडमे कमल और काँटोमे फूल खिलानेवाला ही जाने।

उस दिन बाल-वसन्तके सुषुमा-प्रपूर्ण प्रभातमे जब कोयलके करुण-गानको छातीसे लगाये मलय-सुरभि अपने मनसे बह रही थी, एक श्रमण वासवदत्ताकी सुविशाल अट्टालिकाके द्वार पर भिक्षाके लिए आ खडा हुआ। अचानक वासवदत्ताकी दृष्टि उस बौद्ध भिक्षुके ऊपर पडी। उसने उसे एक बार देखा, सौ बार देखा—देखती ही रही।

उसका नाम उपगुप्त था। सासारिक दृष्टिसे वह भिखारी था, किन्तु स्वर्गीय दृष्टिसे वह राजराजेश्वर था। मनसे बढकर श्रेष्ठ और सुविस्तृत राज्य कोई नही है। उपगुप्तने अपने उसी मनके ऊपर विजय प्राप्त की थी। वह राजेश्वर था, समस्त इन्द्रियाँ उसकी प्रजा थी।

विश्वकी चचलता और अशान्तिका उसे पूरा पता था। उसकी आँखें अचचल और शान्त थी। स्वर्गीय दिव्य आभासे उसका मुख-मण्डल भासमान था। काषाय वस्त्र उसे अपूर्व शोभा प्रदान कर रहे थे।

ससारको अपने सौन्दर्यसे पराजित करनेवाली वासवदत्ता उस भिक्षुके समीप हार गयी, उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो गयी। उसका कौशेय अचल खिसक पडा, कवरी शिथिल हो गयी, उसमे ग्रथित पुष्पराशि मुक्त होकर पृथ्वी पर गिर पडी।

उसने उपगुप्तके समीप आकर कहा—"भिक्षु, भिक्षापात्र आगे बढाओ।"

भिक्षापात्र आगे बढाकर हठात् उपगुप्तने आश्चर्यसे कहा,—"किन्तु तुम्हारे दोनो हाथ रिक्त है, यह मुझे क्या दे सकेगे?"

वासवदत्ता—"यह तुम्हे वह वस्तु देगे जो तुम्हे इस ससारमे कही नही मिली, तथा जो इन हाथोने आज तक किसी औरको प्रदान नही की।"

उपगुप्त—"अर्थात्?"

वासवदत्ता—"ये हाथ रिक्त नही है।"

उपगुप्त—"मै इन स्वर्णभूषणोका क्या करूँगा?"

वासवदत्ता—"मै इन स्वर्णभूषणोकी बात नही कहती। अबोध युवक! ये हाथ रिक्त नही है। ये प्रेमके आलिगनसे परिपूर्ण है। मै वही आलिगन तुम्हे दूँगी। कल्पना करो भिक्षु! जिस वासवदत्ताकी छाया-स्पर्शके लिए बडे बडे राजराजेश्वर व्याकुल रहते है, वह तुम्हे प्रेमका आलिगन देगी।"

उपगुप्तके मुखके भावोमे कुछ भी परिवर्तन नही हुआ। वासवदत्ताने फिर कहा—"भिक्षापात्र आगे बढाओ। मै तुम्हे भिक्षामे अपना हृदय दूँगी।

उपगुप्तने पूछा—"इसका अर्थ?"

वासवदत्ता—"इसका अर्थ यही है कि यह तुम्हारी सुकुमार देह भिक्षावृत्तिके लिए नही है। यह अनुपम सौन्दर्य-सुमन ससारके स्पर्शसे दूर वनपथमे मुरझानेके लिए नही है। आओ भिक्षु, मेरे सदनमे आओ। मै विश्वकी स्वामिनी हूँ, तुम्हारी दासी बनूँगी।"

उपगुप्तके वासनाके प्रभावसे मुक्त मुखमण्डलमे हँसीकी एक क्षीण रेखा दिखायी दी। वह चुप रहा।

वासवदत्ताने विकल होकर कहा—" उत्तर दो भिक्षु।"

उपगुप्तने उत्तर दिया—"किन्तु कई कारणोसे अभी समय नही है।"

वासवदत्ता—"तो कब?"

उपगुप्त—"फिर कुछ दिन बाद आऊँगा।"

'फिर कुछ दिन बाद आऊँगा'—वासवदत्ता मन ही मन सोचने लगी—रमणीके रूपका अपमान! एक सामान्य भिक्षु उसके सौन्दर्यका तिरस्कार करे! देखा जाएगा। मै उस दिनकी प्रतीक्षा करूँगी।

उपगुप्त द्रुत गतिसे सघकी ओर चला गया। वासवदत्ता स्वर्णमूर्तिकी तरह उसे नीरव-निश्चल होकर देखती रही।

(२)

अपने छोटेसे जीवनकी एक झलक दिखाकर सध्या तीव्र गतिसे चली गयी थी। शारदीय शुभ्राकाशकी प्राचीमे उदयोन्मुख चन्द्रमाकी किरणे रूपोज्ज्वल चाँदनी बिछा रही थी।

एक सघन वनके चरणोको धोती हुई कलकल-रव-रता गगा बह रही थी। दिनभरके भिक्षा-भारसे युक्त उपगुप्त उस वनसे होकर अपने मठको लौट रहा था।

उपगुप्तको आते देखकर एक सिह बडे वेगसे उसके ऊपर झपटनेको तैयार हुआ।

पास ही एक घनी झाडी थी। घनी झाडीके हृदयमे एक छिद्र था। वसन्तकी पूर्ण प्रतुलामे यथाशक्ति प्रयास करनेसे भी पत्तियाँ उसे भर नही सकी थी। उस छिद्रसे एक व्याधने वह भयानक दृश्य देख लिया।

ज्यो ही सिह भिक्षुके ऊपर झपटनेको हुआ त्यो ही व्याधने अपने धनुषमे तीर चढा लिया और सामनेकी झाडीका वृक्ष विदीर्णकर सिहको धराशायी कर दिया।

उपगुप्तने चकित होकर चारो ओर देखा। अपने कार्यकी सफलता पर मुस्कुराता हुआ धनुषधारी व्याध उसकी ओर आ रहा था।

भिक्षुने दुःखभरे शब्दोमे व्याधसे कहा——"हाय! तुमने यह क्या किया? सिहने तुम्हारा क्या बिगाडा था? अकारण निरपराधकी हत्या क्यों की?"

व्याधने मन ही मन सोचा——"सिह और निरपराध!"

अपने दयाहीन कठोर जीवनमे व्याधने पहले-पहल यही पर करुणादेवीके दर्शन किये। वह चित्राकित मूर्तिकी तरह कुछ देर खडा रहा। उपगुप्तने करुणा-परिप्लावित दृष्टि उसके ऊपर निक्षेप की। आँखोंने देखा, हृदयने हृदयका सन्देश समझ लिया।

व्याधके दोनो हाथ हिले। उसने कधेसे तूणीर निकालकर गगाके वक्षमे फेक दिया——उसकी निर्दयता गगामे डूब गयी। अपने बलिष्ठ हाथोसे धनुषको दो टूककर पृथ्वी पर पटक दिया——उसकी कठोरता अन्तिम साँस लेने लगी। इसके बाद व्याधने भिक्षुके चरणोमे गिरकर कहा——"देव! यही मेरी अन्तिम हत्या है!"

उपगुप्तने प्रसन्न मुखसे आशीर्वाद दिया। व्याध अपने नवीन ससारमे प्रवेश करनेके लिए चला गया। करुणा उसकी पथ-प्रदर्शिका बनी।

दयार्द्र उपगुप्तने भूमिशायी सिहकी ओर देखा। उसकी छातीमे बुरी तरहसे तीर घुसा हुआ था। भिक्षु उसे बडी कठिनतासे गगा-तटकी ओर ले गया और वहाँ जाकर उसका घाव धोने लगा।

गगाके चचल हृदयमे, दशो दिशाओमे गीति-सुधाकी वृष्टि करते हुए एक नाव जा रही थी। शरदकी निर्मल चाँदनी अच्छी तरहसे खिल गयी थी।

उपगुप्त अपने कार्यमे प्रवृत्त हुआ। सिहके जीवनकी आशा बहुत कम थी, किन्तु भिक्षु दत्तचित्त होकर अपना कार्य कर रहा था।

नाव उसी ओर आने लगी। गानके स्वर अब उपगुप्तको स्पष्ट सुनायी देने लगे। उसने देखा, नावमे और कोई नही, वही मुक्तकुन्तला रूपसी वासवदत्ता शरच्चन्द्रसे आँख लडाती हुई गा रही थी। भिक्षुने सिहकी छातीका तीर बाहर निकालनेको हाथ बढाया, अचानक गान रुक गया। नाव भिक्षुके समीप आ लगी।

नावमे से वासवदत्ता चकित होकर चिल्लायी—"भिक्षु, यह क्या करते हो? क्या तुम्हे मालूम नही, जीवन लाभकर यह भयकर हिंस्र पशु अपने जीवनदाताको नही पहचान सकेगा? यह तुम्हारा सर्वनाश कर डालेगा।"

उपगुप्तने कहा—"रमणी, तुम भूल रही हो। यह उन हिंस्र पशुओंसे अधिक भयकर नहीं है, जिनका वाह्य सुन्दर है। यह उस सुन्दर रूपसे अधिक भयकर नही है, जिसकी ओटसे मनुष्यताका शत्रु, काम उसका वध करनेके लिए कान तक प्रत्यचा खीचे खडा है। यह उस सुन्दर मोहसे अधिक भयानक नही है, जिसने अपने वन्धनसे मनुष्यको वदी वना रखा है। हाथमे स्वर्ण-मुकुट लिये हुए छायाके समान निस्सार लोभ-लालसासे अधिक भीषण नही है, जिसके पीछे मनुष्य अपने ध्येय-धर्मको भूलकर अनन्त जन्म और जगतोमे फिर रहा है।"

वासवदत्ता कुछ न समझ सकी। प्रेमसे अधीर उसने कहा—"भिक्षु, तुम्हारी प्रतीक्षा करती रह गयी, तुम नही आये? क्या भूल गये थे?"

उपगुप्त—"नही, भूला नही। मै आऊँगा, कुछ दिन वाद आऊँगा।"

वासवदत्ता—"आज ही चलो भिक्षु। इससे अधिक सुन्दर अवसर फिर कव आएगा? आज चन्द्रमा ससारको आलोकित कर रहा है। तुम मेरे गृहका अन्धकार दूर करो।"

"ठहरो" कहकर भिक्षु धीरे-धीरे सिहकी छातीसे तीर निकालने लगा।

वासवदत्ताने कहा—"तुमने अपने सौन्दर्यके तीरसे मुझे आहत किया है। पहले मुझे प्राण-दान दो।"

उपगुप्त—"धीरज रखो सुन्दरी! मै अवश्य आऊँगा।"

वासवदत्ता—"कव आओगे? जव तुम्हारी प्रतीक्षा करते करते मेरे नेत्रोंकी ज्योति चली जाएगी, दिन गिनते-गिनते जव समय मुझसे मेरा यौवन छीन लेगा?"

उपगुप्तने उसकी ओर देखकर सोचा—हैं, यह क्या! इतना ज्ञान होने पर भी यह गड्ढेमे गिर रही है!

वासवदत्ताने फिर कहा—"कव आओगे?"

उपगुप्त—"इसी जीवनमे।"

वासवदत्ता—"इसी जीवनमे? यह वहुत वडी अवधि है।"

उपगुप्त —"तो फिर ?"

वासवदत्ता —"इसी क्षण कहो।"

उपगुप्त —"नही।"

वासवदत्ता —"इसी मास ?"

उपगुप्त —"इसी वर्ष आऊँगा, इसे सत्य समझो।"

वासवदत्ता—"मै अपनी अँगुलियो पर दिन और श्वासमे क्षण गिनूँगी।"

वासवदत्ता चली गयी। उपगुप्त मृतप्राय सिहके हृदयसे तीर निकालनेमे प्रवृत्त हुआ।

(३)

शरद गया, शिशिर गया, हेमन्त गया, किन्तु उपगुप्त नही आया। वासवदत्ताने कई वार अश्रुपूर्ण प्रतीक्षा की, किन्तु वह नही आया। उसने अनेक वार शृगार किया, सब व्यर्थ हुआ।

सुमन, सुगन्धि और सजीवनीको लेकर अन्तमे वसन्त ऋतु आयी, फिर भी वह न आया। देखते-देखते अवधि भी वीतनेको आयी, पर उपगुप्त नही आया। वासवदत्ता अतृप्त, अश्रान्त आँखोसे उस कभी न आनेवालेकी राह देखती रही। सब आये, जो नही आया वह एक उपगुप्त था!

अवधिके वीतनेमे दो महीने रहे—एक महीना रहा। ससारके पाथ-निवासमे ठहरा हुआ पथिक 'वर्ष' जानेकी तैयारी करने लगा। उसने शिशिरका कम्वल कन्धे पर डाल लिया था, हेमन्तका विस्तर बाँध लिया था, वसन्तके पुष्प-वस्त्र सँभाल लिये थे, ग्रीष्मका छाता हाथमे, जूता पाँवमे ले लिया था, वर्षाका रिक्त लोटा और डोर भी ले लिया था, उसने ज्यो ही अपनी अन्तिम वस्तु शरदकी चाँदनीको समेटनेके लिए हाथ बढाया, त्यो ही वासवदत्ताने विकल होकर पूछा—"क्या सच मेरा प्रियतम इस साल नही आएगा ?"

रात्रिका समय था। समस्त पृथ्वी अधकारमे डूवी हुई थी। वासवदत्ताका महल सहस्रो आलोक-मालाओसे जगमगा रहा था। ज्योतिकी किरण उसके स्वर्णाभूपणोंमे प्रतिफलित होकर उसके विलास-कक्षको अपूर्व शोभा दे रही थी। असख्य दीपक तारिकाओके समान थे, जिनके बीचमे वासवदत्ताका मुख चन्द्रमा वनकर शोभित था।

उस दिन वासवदत्ताके यहाँ उत्सव था। वह उत्सव उसके प्रेमी एक लक्षपतिके स्वागतार्थ रचाया गया था। एक ओरसे सगीतकी, दूसरी ओरसे सुराकी धाराएँ वह रही थी। वीचमे अभागा लक्षपति डूवा जा रहा था।

अर्द्ध रात्रिके व्यतीत होनेसे पहले ही लक्षपति सुराके प्रभावसे पूर्ण अचेत हो गया। उसे अपनी-परायी किसीकी सुधि नही रही। सगीत वन्द हुआ। दासी, परिचारिका आदि सव विदा हो गये। कक्षमे लक्षपति और वासवदत्ताके सिवा और कोई नही रहा। नही, एक और पिशाचिनी वैठी हुई थी। वह कौन थी ? वेश्या वासवदत्ताकी परिच्छाया।

वासवदत्ताने चारों ओर देखकर अपने सिरहानेसे एक कटार निकाली। रात्रिके समय एक वेश्याके हाथमे कटार! यह क्या करना चाहती है ? जो मुखचन्द्र सगीत सुधाकी वर्षा करता हे, क्या वह वज्र भी गिरा सकता है ?

वह उस अचेत लक्षपतिका वध करनेको वढी। उसका कटार-युक्त हाथ आकाशकी ओर उठा, मानो उसने कहा—"सावधान! ऊपर ईश्वर हे, उसका भय कर!" पापीयसी उस मूक हाथके सकेतको न समझ सकी। उसने वह कटार लक्षपतिकी छातीमे भोक दी, लक्षपतिने चीत्कार छोडी। उसके अन्तिम शब्द थे—"हाय! छलनामयी पिशाचिनी!"

रूपवती राक्षसी—सुकुमार पिशाचिनी अपने विजय पर प्रसन्न हुयी। इसी समय वाहरसे किसीने करुणा-कण्ठसे पुकारा—"वासवदत्ता!"

कपित वासवदत्ताने गवाक्ष-द्वार मुक्तकर कहा—"कौन ?" उत्तरकी आवश्यकता नही रही। गवाक्ष-द्वारसे कक्षका आलोक उस व्यक्तिके मुखमण्डल पर पडा, वह श्रमण उपगुप्त था।

वासवदत्ताने हर्षसे कहा—"भिक्षु, तुम आ गये ?"

उपगुप्त—"नही, किन्तु शीघ्र ही आऊँगा!"

वासवदत्ता—"फिर, इस कुसमयमे आनेका कारण ?"

उपगुप्त—"कुछ नही, मै अपने विहारको जा रहा था। यहाँ पर मुझे तुम्हारी याद आयी। मै यह जाननेको उत्कण्ठित हुआ कि तुम सो रही हो या जाग रही हो।"

वासवदत्ता—"मै जाग रही हूँ।"

उपगुप्त—"पर तुम्हारी दोनो ऑखे वन्द है। अच्छा, जाता हूँ, आज मुझे वहुत विलम्व हो गया है।"

वासवदत्ता—"ठहरो, तुम्हे अपनी प्रतिज्ञा याद है ?"

उपगुप्त—"हाँ।"

वासवदत्ता—"तुमने इस वर्षके भीतर ही मुझसे मिलनेका वचन दिया था।"

उपगुप्त — "अभी वर्षमे कितने दिन शेष है ?"

वासवदत्ता — "केवल एक पक्ष।"

उपगुप्त — "मै अवश्य उसके भीतर ही आऊँगा।"

वासवदत्ता — "तुम झूठ बोल रहे हो, मुझसे छल कर रहे हो।"

उपगुप्त — "अमिताभका शिष्य झूठ नही बोलता। छल, कपट उसका धर्म नही है।"

उपगुप्त रजनीके गभीर अधकारमे मिलकर अदृश्य हो गया। वासवदत्ता गवाक्ष-द्वार वन्दकर छिप गयी।

(४)

वासवदत्ताने धनके लिए लखपतिका वध किया था। भेद खुल गया। न्यायालयमे विचारके लिए वह उपस्थित की गयी।

उसका धन उसके काम नही आया, उसके प्रेमी उसके काम नही आये, उसका अनुपम सौन्दर्य भी उसको दण्डसे मुक्त नही करा सका।

हतभागिनीको न्यायालयसे सूलीका दण्ड नही मिला। प्राण-दण्ड उसके अशान्त जीवनके लिए शान्ति थी, वह दण्ड न था, आशीर्वाद था। उसका रूप कुरूप किया गया। उसके चन्द्र-वदनकी आँखे निकाल ली गयी, नाक-कान काट दिये गये, उसके मृणाल कर छिन्न किये गये, उसकी धन-सपत्ति सव छीन ली गयी।

जिस समय वासवदत्ताको यह भीषण दण्ड मिला, उस समय उसने वडे करुण स्वरसे प्रार्थना की — "मै एक सप्ताहका समय चाहती हूँ। मुझे अपने एक प्रेमीसे मिलना है, वह इस सप्ताहके भीतर आ जाएगा। उसके वाद अत्यन्त प्रसन्नतासे घातकके हाथ और न्यायकी तलवारको अपनी देह सौप दूँगी।"

किसीने उसकी विनयको स्वीकार नही किया। घातकने वासवदत्ताको कुरूप और कुत्सितकर राजपथमे छोड दिया। एक मनुष्य उसके साथ किया गया जो उच्च स्वरसे समस्त प्रजाको उसके पापकी कथा सुनाता था।

कितना भयानक और वीभत्स दृश्य था! उसके क्षतोसे रक्त और पीव वहता था, जिसमे मक्खियाँ भिनभिना रही थी, हाथोसे हीन होनेके कारण अभागिनी उनको उडा भी नही सकती थी। वह करुण शब्दोसे केवल रुदन कर रही थी।

आजसे पहले जो उसके सौंदर्यके उपासक थे, वे उससे घृणा करने लगे, दूर ही से देखकर भाग जाते थे। सब कोई उसके ऊपर थूक रहे थे। पथका एक भिक्षुक, लूला, लँगडा, कुष्ठरोगी भी उसके स्पर्शसे बचनेका प्रयास कर रहा था।

जब उसके पास विश्वको आकर्षित करनेवाला रूप नही रहा, यौवन नही रहा, धन नही रहा, जब समस्त ससार उससे घृणा कर रहा था, वह जीव-मात्रकी समवेदनासे दूर थी, ऐसे दुर्दिनमे उपगुप्तने आकर उसके मस्तक पर अपना हाथ रखा।

वासवदत्ताने चकित होकर पुकारा—"कौन?"

उपगुप्तने उत्तर दिया—"मै हूं।"

वासवदत्ता कण्ठस्वर कुछ पहचान गयी। अपना भ्रम मिटानेको उसने पूछा—"कौन, तुम उपगुप्त हो?"

उपगुप्त—"हाँ, मै उपगुप्त ही हूँ।"

वासवदत्ताने दीर्घ श्वास छोडकर कहा—"लौट जाओ, तुम किस लिए आये? क्या तुम मेरा उपहास करने आये हो?"

उपगुप्त—"तुम मुझसे लौट जानेको कहती हो! मै तुम्हारे ही कहनेके अनुसार तुम्हारे पास आया हूँ। मेरे आनेमे विलम्ब नही हुआ है, अभी वर्ष पूरा होनेमे दो दिन शेष है।"

वासवदत्ताने निराशाके स्वरमे कहा—"हाय! जब मेरी देह वसन्तकी सुरभिसे सौरभवती थी, तब तुम न आये। जब मेरी शोभाका चद्रमा पृथ्वीके ऊपर सुधाकी वृष्टि कर रहा था, तब तुम न आये। जब घातक मेरे यौवनका अन्त करनेके लिए प्रस्तर-खण्ड पर अपना शस्त्र तेज कर रहा था, तब भी तुम न आये। भिक्षु, क्या तुम इतने अबोध हो! मेरे सौन्दर्यका दीपक बुझ गया है, मेरी शोभाका सूर्य अस्त हो गया है। ऐसे समय तुम किस लिए आये?"

उपगुप्त—"भगिनी! मै इन्द्रिय-सुख अथवा और किसी स्वार्थसे प्रेरित होकर तुम्हारे पास नही आया हूँ। शारीरिक सौन्दर्य व्यर्थ है, तुम्हारा यह शरीर इसकी साक्षी देगा। धन भी निस्सार है, तुम्हारा अतुल ऐश्वर्य इसका उत्तर देगा। मै तुम्हारे पास आया हूँ। कहो तुम्हे क्या कहना है?"

वासवदत्ताकी आँखे खुल गयी। उसने कहा—"मै क्या कहूँ भिक्षु! तुम्हारे इस प्रश्नने मेरे उत्तरको छीन लिया है। मुझे ज्ञात हो रहा है, जैसे

मैं एक स्वप्न, एक छाया और एक मरीचिकाके पीछे दौड रही थी। मुझे कुछ नही कहना है। तुम मेरे समीप कुछ देर खडे रहो। तुम्हारे स्पर्शसे मेरी यातना कम हो रही है, तुम्हारे वचनोमे मेरा सन्ताप दूर हो रहा है। भिक्षुश्रेष्ठ, तुम ही कुछ कहो!"

उपगुप्त—"ससारके दु खोकी जड तृष्णा है, तुम इसी तृष्णाकी दासी होकर भटकती रही। तुमने कामके हाथ अपना धर्म बेच दिया, तुमने धनके लिए अपने प्रेमी लक्षपतिकी हत्या की। आज इस दु खके समय तुम्हारे काम कोई नही आया।"

वासवदत्ता—"हाय! भिक्षु, तुमने इससे पहले आकर मुझे ठोकर खानेसे क्यो नही बचाया? तुम आये किन्तु बडी देरमे आये।"

उपगुप्त—"कुछ विलम्ब नही हुआ है, अभी बहुत समय है। तुम इस समय बाह्य नेत्रोंसे हीन हो, किन्तु तुम्हारे अन्तर-नेत्र खुल गये हैं। उठो, भगवान बोधिसत्वका हाथ पकडो। वे तुम्हारे दु खको दूर करेंगे, मुक्त करेंगे।"

वासवदत्ताके मरु-ससारमे आकाश-मार्गसे सुधाबिन्दु बरस गया। उसकी सात्त्विक प्रवृत्ति जाग उठी, उसे ससारकी क्षणभगुरताका बोध हुआ, बोध ही नही, अनुभव भी हुआ! उसने भिक्षुके चरणोमे अपना मस्तक रखकर कहा—"मै प्रस्तुत हूँ। मुझे ले जाओ, मेरा अचल पकडकर मुझे शान्तिके राज्यमे ले जाओ।"

भिक्षुने अपने पवित्र करोसे उसका स्पर्श किया। दोनो सघकी ओर चले।

पाप-तापसे विदग्धा वासवदत्ताने प्रायश्चित्तकी सुरसरिमे स्नान किया। प्रव्रज्या ग्रहणकर अपने शेष जीवनमे शान्ति पायी।

१२

क़ुरान

[पडित सुन्दरलाल]

[आपका जन्म सन् १८७७ मे हुआ। आप धनमऊ जिला मैनपुरी (यू पी.) के रहनेवाले हैं। पडितजी भारतीय इतिहास और सस्कृतिके माने हुए विद्वान हैं। मुस्लिम सस्कृति तथा धार्मिक विपयोका आपका गहरा अभ्यास है। विद्वान होनेके साथ साथ आप एक ऊँचे दर्जेके लेखक, सपादक और वक्ता भी हैं। मिलीजुली भाषा लिखनेमे आपको कमाल हासिल है। 'भारतमे अग्रेजी राज्य', 'गीता और कुरान' आदि आपकी प्रसिद्ध पुस्तके हैं। आजकल आप 'नया हिंद' मासिकके सपादक हैं।]

(१)

कुरान शब्द

'कुरान' शब्द 'केरा' से बना है जिसके मानी है ऐलान करना या पढना। सस्कृत 'क्रन्द', अग्रेजी 'क्राई' और अरबी 'करा' तीनो असलमे एक ही शब्द है। 'कुरान' के लफ्जी मानी है—वह चीज जो ऐलान की जावे या जो पढी जावे। रिवाजी मानी हैं—धर्मकी किताब।

इसलामसे पहले यहूदी अपनी मजहबी किताबको 'कराह' कहा करते थे। यहूदियोकी भाषा इबरानी और अरबोकी अरबी दोनो एक दूसरेसे बहुत मिलती है। 'कुरान' और 'कराह' के एक ही मानी है। कुरानके अदर कुरानसे पहलेकी दूसरे धर्मोकी खास धार्मिक पुस्तकोको भी 'कुरान' कहा गया है।

कुरानको समझनेके लिए यह भी जरूरी है कि उस समयके अरबोकी हालतकी एक छोटीसी तसवीर हमारी आँखोके सामने हो।

(२)

उन दिनोके अरब

मुहम्मद साहबके जन्मके वक्त अरब कौम हजारो छोटे बडे कबीलोमे बँटी हुई थी। इन कबीलोमे आये दिन लडाइयाँ होती रहती थी। हर कबीला

अपनी जगह अपनेको पूरा आजाद समझता था। हरएक कबीलेका अपना एक अलग देवता होता था जिसे उस कबीलेके लोग पूजते थे। इनमें कोई देवता लकड़ीका, कोई पत्थरका और कोई गूंधे हुए आटेका था। कोई देवता मर्द या औरतकी शकलका था, कोई किसी जानवरकी शकलका, कोई किसी पेड़की सूरतका, और कोई बिलकुल अनगढ़। बहुतसे लोग कई कई देवी-देवताओंको भी पूजते थे। पर अधिकतर अरबोंमें 'सबके मालिक' 'एक खुदा' का विचार तक न था और न उन सबका कोई एक धर्म था। उन हजारों कबीलोंको, जो एक-दूसरेके दुश्मन थे, एक धागेमें बाँधनेवाली कोई ताकत न थी। नतीजा यह था कि मुल्कके एक बहुत बड़े हिस्से पर बाहरकी कौमोंकी हुकूमतें कायम हो चुकी थीं। उत्तरमें रोमके सम्राट्की हुकूमत थी, पूरबमें ईरानके खुसरोकी और दक्खिन और पच्छिममें इथियोपियाके ईसाई सम्राट्की। इस तरह अरबका आधेसे अधिक हिस्सा दूसरोंके कब्जेमें था। बदचलनीकी यह हालत थी कि शराब पी पीकर अकसर अरबोंकी मौतें हो जाती थीं। शराबके साथ साथ जुआ चलता था और इस दरजे तक बढ़ा हुआ था कि बहुतसे अरब अपना सारा माल-असबाब जुएमें हारकर आखिरमें अपने तनकी बाजी लगा देते थे और जब हार जाते तो बाकी जिन्दगी जीतनेवालेके गुलाम बनकर रहना स्वीकार कर लेते थे।

गुलामोंके साथ बिल्कुल जानवरोंका-सा बर्ताव होता था। जानवरों ही की तरह वे बाजारोंमें बेचे और खरीदे जाते थे। यहाँ तक कि नन्हे नन्हे बच्चे जबरदस्ती माँओंसे अलग करके बेच डाले जाते थे। माँ किसीके हाथ और बच्चा किसीके। गुलामको मार डालनेकी कोई सजा न थी। गुलाम औरतोंके साथ बदचलनी जायज समझी जाती थी और कभी कभी उनके मालिक उनसे पेशा कराकर पैसा भी कमाते थे।

अरब लोग अपनी बदचलनियोंका घमंडके साथ खुले तौर पर सबके सामने बखान करते थे। औरतोंके साथ भी आम तौर पर बहुत ही बुरा बर्ताव होता था। उनके कोई किसी तरहके हक न माने जाते थे। मर्द जितनी शादियाँ चाहे कर सकता था, और अपनी जिस औरतको जब चाहे तलाक दे सकता था। बापके मरने पर उसकी जितनी बीबियाँ होती थीं वे सब उसके वारिस यानी बड़े बेटेकी बीबियाँ समझी जाने लगती थीं। केवल वह माँ जिसने उस बेटेको जन्म दिया हो, या कोई स्त्री कि जिसका उसने दूध पिया हो, इन दो रिश्तोंको छोड़कर और कोई रिश्ता अरबोंमें पाक न समझा जाता था।

आम तौर पर अरव किसीको भी अपना दामाद वनाना वडी वेइज्जती समझते थे। कही कही तो लडकियोको पैदा होते ही गढेमे गाड दिया जाता था और कही कही उनकी उमर ५ या ६ वरसकी होने पर उन्हे जिन्दा दफन कर दिया जाता था। कुछ लोगोमे, खासकर जो लेनदेन और तिजारतका काम करते थे, सूदखोरीका रिवाज भी वहुत वढा हुआ था। वहादुरी, मेहमाननवाजी, वातका धनी होना जैसी अच्छी वाते भी अरवोमे थी, पर इन गुणोंके होते हुए भी ऊपरकी शर्मनाक वुराइयोके कारण अरवोकी हालत वहुत गिरी हुई और नाजुक थी।

इस तरहके लोगोमे हजरत मुहम्मदने जन्म लिया और उन्हीमे कुरान प्रगट हुआ।

(३)

मुहम्मद साहव और कुरान

इसलामके पगम्वर मुहम्मद साहवकी आत्मा दुनियाकी वडीसे वडी आत्माओमे से थी। वरसोंकी तपस्या, एकात सेवन और लम्बे लम्बे रोजोंके वाद, अरवकी उस जमानेकी गिरी हुई हालतमे, ईश्वरने उन्हे अपने देश और सारी दुनियाके भलेका रास्ता दिखाया। उसीके अनुसार उन्होने अपने धर्मका प्रचार शुरु किया। प्रचार शुरु करनेसे पहले मुहम्मद साहवकी उम्र ४० सालकी हो चुकी थी। ६३ वरसकी उम्रमे वे इस दुनियासे चले गये। इन २३ वरसके अन्दर जव कभी मुहम्मद साहवके सामने कोई खास रूहानी मुश्किल आती थी और उन्हे रास्ता न सूझता था तो वे आम तौर पर रो रो कर अपने ख़ुदासे रोशनीकी प्रार्थना करते थे। उनका वदन अक्सर थर थर कॉपने लगता था, कभी कभी वे चादर लपेट कर लेट जाते थे, आँसुओ और पसीनेसे उनकी चादर तर हो जाती थी, कभी कभी कई दिन तक वे इस तरह विना दाने और पानीके पडे रहते थे। ऐसी हालतमे जो शब्द उनके मुँहसे निकलते थे उन्हे वे अपने ईश्वरका हुक्म मानते थे। २३ वरसके अन्दर ऐसी हालतोमे और कुछ दूसरे खास मौको पर मुहम्मद साहवके मुँहसे जो वाते निकली उन्हीके सग्रहका नाम 'कुरान' है।

मुहम्मद साहवकी वाकी सव नसीहते, कहावते और समय समय पर वताई हुई वाते 'हदीस' कहलाती है और 'कुरान' की तरह इलहामी यानी ईश्वरीय नही मानी जाती।

क़ुरानकी तरतीब

इस तरह २३ बरसके अन्दर कुरानके जो हिस्से अलग अलग वक्तोंमें उतरते या प्रकट होते रहे लोग उन्हे, मुहम्मद साहबके हुक्मसे, उसी समय ताडके पत्तो या चमडेके टुकडो या लकडी या पत्थरकी सिल्लियो पर लिख लेते थे। कोई कोई उन्हे पढनेके लिए भी ले जाते थे। बहुतोको वे जबानी भी याद हो गये। आखिरमे ये ताडपत्र, चमडेके टुकडे वगैरा लकडीके एक बक्सके अदर बिना किसी तरतीबके रख दिये जाते थे। सग्रह बढता चला गया। कुछ हिस्से मुहम्मद साहबके ही जमानेमे और उनके हुक्मसे अलग अलग सूरो यानी अध्यायोमे बाँट दिये गये।

मुहम्मद साहबके बाद पहले खलीफा हजरत अबु बकरने उन सब टुकडोंको निकाल कर जो उस वक्त मौजूद थे ओर कुछ और हिस्से जो लोगोको जबानी याद थे, उनकी मददसे पहली बार ११४ सूरोमे एक बाजाब्ता सग्रह तैयार कराया, और उसे मुहम्मद साहबकी बेवा हिफसाके पास सम्हाल कर रखवा दिया।

लेकिन इन अलग अलग हिस्सोकी कुछ नकले दूसरे लोगोके पास भी थी। जिन लोगोको कुछ हिस्से जबानी याद थे उन्होंने भी अपनी अपनी यादसे वे हिस्से लिख रखे थे। नतीजा यह हुआ कि दस पद्रह बरसके अदर ही कई अलग अलग कुरान मक्के, मदीने और इराकमे चल पडे, जिनमे एक दूसरेसे कही कही काफी फरक था। आखिरमे मुहम्मद साहबके करीब २० बरस बाद, तीसरे खलीफा हजरत उसमानने कुरानकी उस कापीको जिसे हजरत अबु बकरने तरतीब दी थी मुस्तनद यानी प्रामाणिक ऐलान किया, उसकी नकले कराकर सब सूबोमे भिजवा दी, और इनके खिलाफ जितनी दूसरी कापियाँ या नुसखे इधर उधर चल पडे थे उन सबको मँगवा कर जलवा दिया, ताकि एक ही कुरान पक्का और ठीक माना जावे और फिर कभी उसमे कोई हेरफेर न किया जा सके। कुरानकी वही तरतीब आज तक दुनियामे है और उसे ही लोग ठीक मानते है।

इस पर भी आज साढे तेरह सौ बरस बाद सात तरहके कुरान मिलते है। इन सातमे फरक केवल इतना ही है कि किसीमे जिसे एक आयत मान लिया गया है उसीको दूसरेमे दो हिस्से करके दो आयते माना गया है। इससे आयतोकी कुल तादादमे फरक पड गया है। इस तरह इन

अलग अलग कुरानोमे कुल आयतोकी तादाद ६,००० से लेकर ६,२३६ तक है। लेकिन बात सबमे ठीक वही है।

(५)

कुरानके समझनेमे कठिनाई

लेकिन जिस रूपमे कुरान इस समय हमारे सामने है उसमे एक बहुत बडी कठिनाई यह है कि उसके अलग अलग हिस्से उस तरतीबमे नही है जिस तरतीबमे वे नाजिल हुए यानी उतरे या प्रकट हुए। बादके सूरे शुरूमे और शुरूके सूरे बादमे है और कभी कभी एक ही सूरेके अन्दर बादकी आयते पहिले और पहिलेकी आयते बादमे रख दी गई है। कौनसी आयत कब, किस मौके पर और किन हालतोमे उतरी इसका पता लगना बहुत कठिन है। बहुतसी आयतोके बारेमे तो इस बातमे मुसलमान आलिमोंकी रायमे भी फरक है। अधिकतर आयतोके बारेमे यह तय हो चुका है कि कौनसी कब और किस मौके पर उतरी। फिर भी कुरानकी इस अजीब तरतीबके कारण कुरानके मामूली पढनेवालोको समझनेमे बडी दिक्कत पडती है। अलग अलग मजमूनो पर अगर कुरानकी अलग अलग चुनी हुई आयते होती तो लोगोको कुरानका मतलब समझनेमे ज्यादा आसानी होती ।

(६)

कुरानकी भाषा

अरबीके विद्वानोकी राय है कि कुरानकी भाषा ऊँचे दरजेकी बडी सुन्दर, रसीली और एक तरहकी आजाद नज्म या स्वतत्र कविताका ढग लिए हुए है। कुरानकी किरअत यानी पढनेके ढग उसी तरह मुसलिम विद्वानोमे अलग अलग है, जिस तरह वेदपाठके हिन्दू पडितोमे।

(७)

कुरानका असर

कुरानके उपदेशोने अरबोकी बहुतसी बुराइयोको, जैसे शराबखोरी, जुआ, सूदखोरी और लडकियोका मारा जाना जडसे मिटा दिया, हजारो अलग अलग देवी-देवताओके पूजनेवालोको एक निराकार ईश्वर, एक अल्लाह ताला, की पूजा करना सिखा दिया, एक दूसरेके दुश्मन हजारो कबीलोको एक कर उन सबकी एक अरब कौम बना दी, सारी कौमके चलनको पाक और ऊँचा कर दिया, उनमे विद्या और ज्ञानकी चाह पैदा कर दी

और मुल्कके उन सब टुकडोको जो अलग अलग विदेशी ताकतोके मातहत थे आजाद करके सारे देश पर एक आजाद और खुद-मुख्तार अरब हुकूमत कायम कर दी। यह सब काम २३ सालके अन्दर अन्दर पूरा हो गया।

मुहम्मद साहबके मरनेके सौ बरसके अन्दर अरबका यह नया मज़हब चीनकी दीवारसे लेकर अटलांटिक समुद्र तक, एशिया, अफरीका और यूरोप, तीनोमे फैल गया। सारा पच्छिमी एशिया, उत्तरी अफरीका और आधे यूरोप पर अरबोकी हुकूमत कायम हो गई और तरह तरहकी विद्याओ और कलाओमे उन दिनोंके अरब पच्छिमी दुनियाकी सबमें बढीचढी कौम माने जाने लगे।

आज दुनियामे तीस करोडसे ऊपर आदमी कुरानके माननेवाले है और दुनियाका कोई मुल्क ऐसा नही है जहाँ कुछ न कुछ लोग इस किताबसे अपनी जिन्दगीका रास्ता न ढूंढते हो।

(८)

कुरानकी तालीम

आखिरमे थोडेसे शब्दोमे हम कुरानके बुनियादी उसूलो और उसकी तालीमका निचोड दे देना चाहते है। कुरानके बुनियादी असूल ये है।

अल्लाह एक है। उसकी कोई शकल सूरत नही। वह सबका मालिक और सबको उनके कामोका फल देनेवाला है। उस एक अल्लाहके सिवा किसी दूसरेकी पूजा नही करनी चाहिये।

सब आदमी उसी एक ईश्वरके बन्दे और भाई भाई है। "आदमियोमे सबसे बढकर इज्जतके काबिल वह है जो बुराईसे बचे और नेकीके कामोमे लगा रहे।"

दुनियाके सब बडे बडे धर्मोका निकास उसी एक अल्लाहसे है। इन सब धर्मोके कायम करनेवालोको उसी एक अल्लाहसे रोशनी मिली है। इसलिए ये सब धर्म सच्चे है और असलमे "सब धर्म एक है।"

अलग अलग धर्मोमे केवल देश, काल और हालतोके फरकसे रीति-रिवाजों और पूजा-इबादतके तरीकोमे फरक है, बुनियादी उसूलोमे कोई फरक नही। झगडेकी वजह यह होती है कि लोग अपने धर्मके बुनियादी उसूलोंसे हट जाते है और नेकी और भलाईके कामोकी जगह रीति-रिवाजो और पूजाके तरीको यानी 'शरअ और मिनहाज' को जियादा जरूरी समझने लगते हैं।

"असली चीज यह नही है कि आदमी पूजा यानी इबादतके समय पूरबको मुँह कर ले या पच्छिमको। असली चीज यह है कि आदमी एक अल्लाहको माने और नेक काम करे।" कुरानमे नमाज पढने और रोजा रखने दोनोका हुक्म दिया गया है। पर न नमाजका कोई खास ढग बताया गया है और न रोजेका कोई खास कडा कानून। नमाज और रोजे, दोनोकी गरज यही बताई गई है कि "आदमी बुराईसे बचा रहे और नेक काम करे।" "जो आदमी एक अल्लाहको माने और नेक काम करे, वह चाहे किसी भी खास धर्मका माननेवाला हो, उसे न कोई डर है न कोई गम।"

किसी भी कौम या मुल्कमे जब लोग धर्मके बुनियादी उसूलोंसे हट जाते है तो अल्लाह उनमे कोई न कोई रसूल या पैगम्बर भेजकर उसके जरिये उनमे सच्चे दीनको फिरसे कायम करता है और लोगोंको ठीक राह पर लाता है। इस तरहके पैगम्बर सब कौमो, सब जमानो और सब मुल्कोमे होते रहे हैं।

अलग अलग धर्मोके कायम करनेवालो या "अलग अलग मुल्को और कौमोके पैगम्बरोमे फरक करना यानी उनमेसे किसीको मानना और किसीको न मानना गुनाह है।"

"कुरान अपनेसे पहलेकी सब इलहामी यानी ईश्वरीय किताबोकी तसदीक करता है" यानी उन्हे सच्चा ठहराता हैं, और मुहम्मद साहब अपनेसे पहलेके "सब पैगम्बरोकी तसदीक करनेवाले हे।"

भगवत् गीताकी तरह कुरान भी खास खास हालतोमे धर्मकी रक्षाके लिए हथियार उठानेकी इजाजत देता है। पर कुरानका कहना है कि "धर्मके मामलेमे किसीके साथ किसी तरहकी जबरदस्ती नही होनी चाहिये।" और सब बातोमे भी कुरानका साफ हुक्म है कि "अगर आदमी दूसरोके सब कसूरोको माफ कर दे, सब्रके साथ बरदाश्त कर ले और बुराईका बदला भलाईसे दे, तो उसके लिए यह ज्यादा अच्छा है, क्योकि अल्लाह भी सबको माफ कर देनेवाला और सब पर दया करनेवाला है। सचमुच अल्लाह उन्हे ही प्यार करता है जो दूसरोके साथ नेकी करते है।"

दूसरे शब्दोमे कुरानके अन्दर बराबर दो बाते बताई गई है, एक ईमान यानी विश्वास और दूसरे नेक अमल यानी नेक काम। ईमानका मतलब यह है कि हर आदमी एक अल्लाह पर और उसके भेजे हुए सब मुल्को और सब कौमोके सब पैगम्बरो या रसूलो पर, सब ईश्वरीय किताबो पर, आदमीके अदरके नेक रुझानो और मरनेके बादकी ज़िन्दगी पर विश्वास करे।

नेक अमलका मतलब यह बताया गया है कि आदमी अपने नफ्सको काबूमे रखे और अपने तनसे, धनसे और मनसे सबके साथ नेकी करे। कुरानमे बार बार कहा गया है "इन्नल्लाह युहिब्बुलमुहसनीन"—यानी अल्लाह उन्हे ही प्यार करता है जो दूसरोके साथ नेकी करते है।

(९)

साराश

हकीकतमे जहाँ तक कुरानके बुनियादी उसूलोकी बात है, दुनियाकी और सब बडी बडी धार्मिक किताबोकी तरह कुरान भी सब मुल्को, सब कौमो और सब आदमियोकी एक बराबर बपौती है, और किसी भी सच्चे खोजीको धर्म और रूहानी तरक्कीका ठीक ठीक रास्ता दिखानेके लिए काफी है। कुरान उसी 'मजहबे इन्सानियत' यानी 'मानवधर्म' की तालीम देता है जो सारी दुनियाके लिए एक बराबर है और जो सब धर्मोका जौहर है। उसे ही हिन्दू सन्तोने 'प्रेमका धर्म' और मुसलमान सूफियोने 'मजहबे इश्क' कहा है।

('गीता और कुरानमे' सकलित)

१३

निर्भयता

[श्री किशोरलाल घ० मशरूवाला]

[आप बडे चितक, तत्त्वज्ञ और धार्मिक पुरुष थे। महात्मा गाधीके सपर्कमे आने पर वकालत छोडकर आप देशसेवामे लग गए। आप गुजराती और हिन्दीके समर्थ लेखक थे। गाधीजीके बाद आखिरी दम तक आप 'हरिजन' पत्रोका सपादन कार्य वर्धासे करते रहे।]

"अब भी मनुष्यका पहला कर्तव्य भयको नाबूद करना है। हमे डरसे बरी होना चाहिये। तब तक हम पुरुषार्थ कर ही नही सकते। आदमी जब तक डरको अपने पैरो तले कुचल नही सकता, तब तक उसके सारे काम गुलाम-वृत्तिसे सने हुअे और वास्तविकके बदले दिखाऊ होते है तथा उसके विचार भी गुलाम और कायरके जैसे होते है।"

—टॉमस कार्लाइल ('हीरो वर्शिप')

'हम निर्भय कैसे बने?' अिस सवालका ठीक ठीक जवाब तो वही दे सकता है जिसने डरको पूरी तरह जीत लिया है। मेरी वह स्थिति नही है। फिर भी साथियोके साथ विचार करनेकी कोशिश करता हूँ।

१

सस्कार और परिचय

एक छोटी-सी कहानी सुनी है। एक खिवैयेसे किसी पण्डितने पूछा, "तुम्हारे पिता कैसे मेरे?" मल्लाहने कहा, "एक वार जव वे जहाजमे बैठकर यात्रा कर रहे थे तो वडा भारी तूफान उमडा। उनका जहाज डूव गया और साथ साथ वह भी।" पण्डितने पूछा "और तुम्हारे दादा?" केवट वोला, "जी! सुना है कि वह भी डूवकर मरे थे, और उनके साथ मेरे दो चाचा भी।"

पण्डित सन्न रह गया और कहने लगा, "और फिर भी तुम पानीमे जाते हो? तुम्हे डर नही लगता?" केवटने पूछा, "महाराज, आपके पिता-जीका देहान्त कैसे हुआ?" पण्डित वोला, "उनका तो वुढापा हो गया था। कअी दिनो तक वीमार रहे और अपने विस्तर पर ही मर गये।" केवट—"और उनके पिता?" पण्डित—"वह भी उसी तरह बिछौने पर मरे।" केवट—"और फिर भी आपको विस्तर पर सोनेमे डर नही लगता?"

इन्ही लोगोकी विवाह-प्रथाके वारेमे एक वात सुनी है विवाहके वक़्त पुरोहित दुलहिनसे पूछता है, "देख तेरा पति समुद्रमे जायगा। मस्तूल पर चढेगा। वहाँसे गिरनेका डर हमेशा रहेगा। तूफान आने पर डूबनेका डर भी रहेगा। क्या ऐसा पति तुझे पसन्द है?" वधू कहती है, "पसन्द है।" पुरोहित—"अच्छा तो तुम्हारा विवाह हो गया।"

एक वनियेके लडकेसे एक वार कहा गया, "तुम्हारे सामने दो बाते रखी जाती है, उनमे मे एक पसन्द कर लो —या तो दस हजार रुपयेकी थैली लेकर वीहड और डरावने जगलको अकेले पार कर जाओ और वह रकम ले लो, अथवा तुम्हे पूर्व अफ्रीका अथवा उसी तरहके किसी कमाई-वाले देगमे भेज दिया जायगा और वहाँ तुम्हे एक हजार रुपया देकर छोड दिया जायगा, तुम अपनी तकदीर आजमा लो। वतलाओ अिन दोनोमे से तुम क्या पमन्द करोगे?"

लडकेने विना विलम्वके अुत्तर दिया, "दूसरी वात।" अँधेरी रातमे वडी रकम अपने साथ लेकर जगल पार करनेमे उसे ज्यादा डर लगता था। यही सवाल अगर किमी राजपूतके लडकेसे पूछा जाता, तो वह पहली वात पमन्द करता। लेकिन अगर उसमे एक हजार रुपयोकी पूंजीके वल पर रोजगार करनेके लिए कहा जाता, तो मुमकिन है कि वह झिझकता।

देहातियोको अंधेरी रातमे विना चिरागके चाहे जहाँ चले जानेमे कुछ सोच-विचार करनेकी जरूरत नही मालूम होती। शहरके लोगोंकी अपने मकानके अहातेमे भी वगैर चिरागके जानेकी हिम्मत नही होती।

जगल और पर्वतोकी जनता शेर, सिह वगैरा जगली जानवरोसे उतना नही डरती, जितना कि गाँव और शहरके लोग डरते है। लेकिन दूसरी तरफसे यदि किसी देहातीको कलकत्ता या वम्वई जैसे शहरमे पहले पहल जाकर अकेला छोड दिया जाय, तो वह इतना घवडाता है कि मानो उसे जगली जानवरोके झुडमे लाकर छोड दिया हो।

इन सव उदाहरणोसे मालूम होता है कि हम वश-परम्परागत सस्कार या मुहावरेके कारण जिस प्रकारके जीवन और परिस्थितिके आदी हो जाते है, उस जीवन और परिस्थितिके खतरोसे हमे डर नही लगता। उससे अलग प्रकारके जीवन और परिस्थितिमे डर लगता है, चाहे उस दूसरे जीवन और परिस्थितिमे दरअसल डरने लायक कोई वात भले ही न हो।

इस परसे एक नतीजा यह निकाला जा सकता है कि जिस तरहके जीवन और परिस्थितिका हमारे दिलमे डर रह गया हो, उसका हमे कुछ अनुभव कर लेना चाहिये। एक वार, दो वार, पाँच वार, अनुभव करते करते डर कम होता जाता है।

कुछ और उदाहरण

इस नियमके और भी कई उदाहरण दिये जा सकते है। तैरना जाननेवाले छोटे-छोटे वच्चे भी कितनी ऊँचाई परसे पानीमे कूद पडते है, यह हर किसीने देखा होगा। लेकिन जो कभी पानीमे ऊपरसे कूदा ही न हो, ऐसा वडा आदमी भी घवडाता है और कूदनेकी हिम्मत नही करता। लेकिन अगर उसे तैरना आता हो और कोई उसे ऊपरसे जवरदस्ती पानीमे ही ढकेल दे, तो उसे अनुभव हो जाता है और डर निकल जाता है। गुव्वारो (पैरेशूट) के साथ कूदनेवालोको इसी तरह अभ्यास कराया जाता है और उनका डर निकल जाता है। कुछ डर अनुभवके अभावका ही परिणाम होता है। इस तरहका डर मिटानेका साधन अनुभव और अभ्यास ही है।

२

अभ्यासकी जरूरत

एक छोटे सिपाही या देहातीने कोई वडा वहादुरीका काम किया है और शहरमे रहनेवाले किसी धनिक लेकिन अविद्वान व्यापारीने वडा भारी

दान दिया है। राजाकी ओरसे उन्हे दरबार या दावतका न्यौता मिलता है। उन्हे कुछ इनाम और अल्काब भी दिये जानेवाले हैं। मौका बडी खुशीका है। लेकिन फिर भी उनके दिलमे बडी खलबली मच जाती है। खडे होते हैं तो पैर लडखडाने लगते हैं। बोलनेका मौका आता है, तो मुंहसे शब्द नही निकल सकते। दिलमे तो आनन्द उमड रहा है, लेकिन बाहरी लक्षण सारे डरके होते हैं।

उस वक्त अगर वह सिपाही यह देखे कि राजा पर कोई हमला होने जा रहा है, तो उसका डर गायब हो जायगा और हमला करनेवाले बहुतसे हो, तो भी वह उन पर टूट पडेगा। अगर देहाती देखे कि मकानकी छत राजाके सिर पर गिरना चाहती है, तो वह झट-से उसे थामनेके लिए दौडेगा। इसी तरह राजाको पैमेकी कोई अडचन हो, तो व्यापारीकी घबडाहट गायब हो जायगी। लेकिन जोखिमके न रहते हुए भी, खुशीके मौके पर वे डर जाते हैं।

इन मिसालोसे मालूम होता है कि किस तरह जहाँ कोई खतरा नही है, बल्कि आनन्दका प्रसग है, वहाँ पर भी अभ्यासके अभावमे डर पैदा होता है और किस तरह खतरेके होते हुए भी पूर्व अभ्यासके कारण डरका निवारण हो जाता है।

इस परसे यह अनुमान होता है कि भयवृत्तिका सबध वास्तविक खतरेसे उतना नही है जितना कि अनुभवकी नवीनता या परिस्थितिका सामना करनेकी अकुशलतामे है। हकीकतमे खतरनाक स्थिति हो, तो भी निर्भयता हो सकती है और बिलकुल बे-खतरेकी हालतमे भी डर लग सकता है।

इस परसे, कमसे कम, कुछ प्रकारके डरके विषयमे यह कहा जा सकता है कि नये अनुभवके दिल पर पडनेवाले पहले नैसर्गिक आघातका नाम ही डर है। नैसर्गिक आघातमे मतलब मनुष्यकी इच्छा-शक्ति या विवेक-बुद्धिके सावधान होनेसे पहले उसके चित्तपर पडनेवाले असरसे है।

जब उसी तरहका अनुभव दुबारा होता है या होनेकी सभावना उपस्थित होती है, तब मनुष्यकी इच्छा-शक्ति या तो उस आघातको झेलकर रोकनेका प्रयत्न करती है अथवा उसके अनुकूल होकर उसे बढानेका प्रयत्न करती है। पहली परिस्थितिमे बादका हरएक अनुभव पहलेके अनुभवसे कम आघात पहुँचाता है, यानी डरकी वृत्ति घटाता जाता है। दूसरी परिस्थितिमे हरएक अनुभव डरको तो कम नही करता, लेकिन उस तरहका

आघात पहुँचानेवाले अनुभव या परिस्थितिसे नफरत करने लगता है और उसे टालनेका प्रयत्न करता है।

उदाहरणार्थ, फर्ज कीजिये कि एक लडका तैर तो सकता है लेकिन उसमे पानीमे कूदनेकी हिम्मत नही है। दूसरा कोई उसे ढकेल देता है, तव पहली वार उसे डर तो लगता है और शायद वह घवडा भी जाता है, लेकिन यदि उसकी इच्छा-शक्ति इस दिशामे काम करती हो कि उसमे कूदनेकी शक्ति आनी ही चाहिये और कूद न सकना शर्मकी वात है और साथ ही यदि उसे यह अनुभव भी हो जाय कि दरअसल उसे जितना डर था उतने डरकी कोओी वात नहीं है, उल्टे कुछ मजा ही आता है, तो दो-चार प्रयोगोके वाद वह डरको विलकुल भूल जाता है। लेकिन अगर उसकी इच्छा-शक्ति कूदनेके अनुकूल ही न हो, उस तरहके साहसको वह नादानी समझता हो और इत्तिफाकसे यदि उसे चोट-ओट लग जाय, या नाक, कान और पेटमे थोडा-सा पानी भर जाय, तो सभव है कि हर प्रयोगके साथ डरका कारण न रहने पर भी, उसके दिलपर नफरतका सस्कार गहरा होता जायगा।

३

निर्भयताके साधन

यह दूसरी बात बहुत सोचने लायक है। हमारा बच्चोकी परवरिशका तरीका ही कई बार उन्हे कायरताका अभ्यास कराता है।

गाधीजीने अपनी भयवृत्तिका जिक्र कई वार किया है। उन्होने कहा है कि वचपनसे ही वह अँधेरेमे जानेसे डरते थे। साँप-विच्छूका डर उन्हे सदासे रहा है। उस डरको हटानेके लिए उनकी धात्रीने उन्हे रामरक्षाका पाठ करना सिखाया था। रामरक्षामे उनकी श्रद्धा थी। इसलिए उसके पाठमे उन्हे कुछ आश्वासन भले ही मिला हो, लेकिन वह पाठ उनके दिलसे अँधेरे और साँप-विच्छूकी नफरत नही हटा सका।

यही हाल मेरा था। फर्क इतना ही था कि मुझे विच्छुओकी अपेक्षा चोर-डाकू, वल्कि वावा और पुलिसका डर ज्यादा लगता था। उसके निवारणार्थ मै हनुमानस्तोत्रका पाठ करता था और कल्पना किया करता था कि रातको हनुमानजी मेरे मकानके चारो तरफ गश्त लगाते है और इस श्रद्धासे निर्भयता अनुभव करनेकी कोशिश करता था। अव तो पुलिस और वावाके डरका कोई सवव नही रहा, तो भी जव अपने अन्दर गहरा उतरकर

टटोलता हूँ, तो आज भी उनकी वेशभूषाके प्रति घृणा पाता हूँ। और यद्यपि प्रत्यक्ष जीवनमें जेलके बाहर चोरसे एक ही बार मौका पडा, तो भी स्वप्नमे जब चोरसे मुठभेड हो जाती है, तब डर जाता हूँ।

रामरक्षा, हनुमानस्तोत्र या नारायणकवचके पाठसे भयको हटानेकी शिक्षा देनेवाले गुरुजनोकी श्रद्धा तो अच्छी होगी, लेकिन वह शिक्षा मनुष्यकी अपनी इच्छा-शक्ति बढानेकी दृष्टिसे अच्छी नही मानी जा सकती। इन गुरुजनोने यह सस्कार पैदा नही किया कि साँप, बिच्छू, बाबा, पुलिस या अँधेरेसे डरनेकी कोई वजह नही है। उलटे, उनके नामसे वे स्वय भी हमे कभी कभी डराते रहे हैं और इस प्रकार उन्होने यह सस्कार पक्का कर दिया है कि ये सब चीजे जरूर भयकर हैं और सिवा भगवानके दूसरा कोई हमे उनसे बचा नही सकता।

सूक्ष्म संस्कारका परिणाम

भयका सस्कार कैसे कायम होता है, इसका एक दूसरा उदाहरण श्री जाजूजीके स्वानुभवमे से देता हूँ। वह कहते हैं कि उन्हे बाज दफा एक ऐसा सपना पडता है कि वह कही सफर कर रहे हैं और रास्ता भूलकर परेशान हो रहे हैं। इसे समझाते हुए वह अपने बचपनका एक प्रत्यक्ष अनुभव बतलाते है बचपनमे वह अपने परिवारके लोगोके साथ रामेश्वरजीकी यात्रा करने गये थे। वहाँ सवेरे शौचके लिए समुद्रकी तरफ गये। लौटते समय उन्हे दिशाभ्रम हो गया और वह उलटी ही दिशामे भटकते रहे। बहुत देर तक चलते रहने पर भी जब उन्हे परिवारके लोगोंकी कोई आहट नही मिली, तो वह बडे घबडाये। अन्तमे बडी परेशानीके बाद अपने परिवारवालोके पास पहुँच पाये। वह मानते है कि इस अनुभवकी इतनी गहरी चोट उनके दिल पर रह गयी है कि उसीके कारण उन्हे इस तरहके सपने पडते है। बादमे उस तरहकी यात्राका फिर मौका ही नही आया। सभव है कि उस अनुभवके कारण उस तरहकी यात्रामे उन्हे दिलचस्पी ही नही रह गयी हो। अगर फिर कोई मौका आता, या वह कोशिश करके उस तरहका मौका खोजते, तो इस डरके निकल जानेकी सभावना थी।

इन उदाहरणोसे हम जान सकते है कि खतरेके प्रत्यक्ष मौको और खतरोकी कल्पनाका भयसे क्या सबध है। खतरेके प्रत्यक्ष मौके पहले ही अनुभवमे जितना डर पैदा करते हैं, उतना दूसरे अनुभवमे नही करते। बल्कि खतरेसे जितना ज्यादा परिचय हो जाता है, उतने ही हम ढीठ बनते चले जाते हैं। लेकिन पहले ही कटु अनुभवके बाद या बिना अनुभवके ही,

अगर हम भयकी एक कल्पना कर लेते है और उस कल्पनाको अर्से तक मजबूत करते जाते है, तो हमारी साहस-वृत्ति तथा भयको जीतनेकी इच्छा-शक्ति कमजोर होती जाती है।

विचार किया जाय, तो हर कोई समझ सकता है कि अँधेरा, सांप, बिच्छू, चोर, डाकू आदिका जो डर माना जाता है, उसे अनुभवका कितना आधार है। लाखो और करोडो लोग रोजमर्रा अँधेरेमे रहते है और घूमते-फिरते है। सैकडो घरोंमे चिराग जैसी कोई चीज करीव करीब होती ही नही है। देहातोमे रास्तेपर उजाला नही होता। खेतोमे लालटेने नही होती। लोग नगी जमीन पर लेटते है। फिर भी कितने लोगोंको और जीवनमे कितनी वार अँधेरेमे दुर्घटनाओका शिकार होना पडा है, साँप-बिच्छुओंने काटा है या चोर-डाकुओने लूटा है? मोटरकी जितनी दुर्घटनाअे रोज सुननेमे आती है, उनके मुकाविलेमे साँप-बिच्छुओंके द्वारा काटे जाने या चोर-डाकुओं द्वारा लूटे जानेकी दुर्घटनाओकी सख्या कितनी कम है? मोटरोंकी दुर्घटनाओंके डरसे कितने लोग उनमे बैठना या सडकोपर चलना छोड देते है? इन चीजोका डर जितना माना जाता है, उतनेके लिए सचमुच अनुभवका आधार नही है।

४

ऊपरके विवेचनसे भयवृत्ति और इच्छा-शक्तिके भौतिक स्वरूपकी कुछ कल्पना हम कर सकते है।

आत्मविश्वासका अभाव

टेलिफोनका प्रयोग करनेवालोको वाज दफा यह अनुभव हुआ होगा कि हम जो नवर चाहते है उस नवरके वदले कोई दूसरा ही नवर वार वार जुड जाता है। उदाहरणार्थ, हम चारका अक घुमावे तो भी चारके वदले छहका अक लग जाता है। तारोकी रचनामे कुछ गडवड हो जानेसे ऐसा होता है। कई वार यह भी अनुभव होता है कि टेलिफोनके कानसीग (रिसीवर) मे हमे दूसरे दो नवरोंके बीच चलनेवाली बातचीत वरावर सुनायी देती है और कभी कभी तो अुनके शब्दोंको अपने ही सवाददाताके शब्द समझकर जवाव देनेकी भूल भी हम कर डालते है। हमारी इच्छाके विरुद्ध जो दूसरा नवर मिल जाता है, या हमारी वातचीतके बीचमे दूसरोंके शब्द आ जाते है, यह सब बीचके तारोमे कुछ अव्यवस्था हो जानेसे होता है। फोन-कार्यालयमे खवर देनेसे वहाँका कर्मचारी तारोको देखकर ठीक कर लेता है।

हमारा शरीर भी कुछ जिसी तरहका यंत्र है। बाहर जो घटनाएँ होती है, उनके प्रथम आघातसे जो वृत्तियाँ उठती है, वे हमारी इच्छा-शक्तिके अधीन नही होती। वह अनुभव अगर बिलकुल नयी किस्मका हो, तो वह हमारे सुखके लिए होनेवाला होने पर भी उसका मुकाबिला करनेमे हमे कुछ घबडाहट, आत्मविश्वासकी कुछ कमी, महसूस होती है। इस प्रकारकी परिस्थितिका मुकाबिला करनेमे आत्मविश्वासकी कमी ही भयवृत्ति है।

यह केवल यान्त्रिक परिणाम है। याने जिस तरह फोनके तारोंमे अव्य-वस्था होनेमे नवरोकी गडबडी हो जाती है, उसी तरह यह हमारे ज्ञान-तंतुओंमें होनेवाली गडबडी है।

फिर प्रश्न आता है उस अव्यवस्थाको सुधारनेका अथवा उसी तरह निबाहते रहनेका। ये दोनो बाते हमारी इच्छा-शक्ति पर निर्भर है। अपनी इच्छा-शक्तिके अनुसार या तो हम उस भयको जीतनेका और आत्मविश्वास प्राप्त करनेका प्रयत्न करते है अथवा उसे पोसते रहनेका और आत्मविश्वास खोनेका।

जब हम पहली तरहकी कोशिश करते है, तो काँपते काँपते भी अपनी साहस-वृत्तिको जगाते है, जोर बटोरते है और भयका मुकाबिला करते है। यह अलग बात है कि हम अहिंसक साधनोसे मुकाबिला करते है या हिंसक साधनोंसे। फिर दुबारा, तिबारा, हम मुकाबिलेके मौकेकी तलाशमे रहते है।

काल्पनिक भय

यदि हम किसी संस्कारवश आत्मविश्वास गँवा देनेकी कोशिश करते रहते है, तो अपनी कल्पना-शक्ति पैनी करते है और वास्तविक जरूरतसे भी ज्यादा भयकी कल्पना कर लेते है और जिससे उस परिस्थितिका सामना ही न करना पडे, ऐसे तरीकेसे हटनेकी कोशिश करते है।

साधु लोग एक कहानी सुनाया करते है किसी शहरके बाहर एक सन्त रहते थे। एक दिन उन्होंने हैजेकी राक्षसीको शहरकी तरफ जाते हुए देखा। उन्होने पूछा, "तू क्यो जा रही है और कितना सहार करेगी?" राक्षसी बोली, "मुझे भूख सता रही है, मैं दो सौ आदमियोको खाऊँगी।" शहरमे तुरन्त हैजेका दौरा हुआ और करीब दो हजार आदमियोके मरने या बीमार होनेके बाद राक्षसी लौटती हुई मालूम पडी। सन्तने कहा, "तूने दो सौके बदले दो हज़ार आदमियोको कैसे मारा?" राक्षसी बोली,

“नही महाराज, मैंने तो सिर्फ दो सौको ही खाया। बाकीके तो केवल डरसे ही मर गये। मै उनकी मौतके लिए कतई जिम्मेवार नही हूँ।”

यह एक काल्पनिक किस्सा है, लेकिन उसका तात्पर्य वास्तविक है। प्रत्यक्ष खतरा वास्तवमे जितना नुकसान पहुँचा सकता है, उसकी अपेक्षा खतरेकी कल्पनासे कितना अधिक नुकसान हो सकता है, यह दिखानेकी यहाँ कोशिश है। और यह एक सत्य है।

डरको जीतनेका साधन

यह सच है कि कभी कभी कल्पनाका प्रयोग हिम्मत कायम रखने याने डर हटानेके लिए भी होता है। मसलन, डर मालूम होते हुए भी प्रतिष्ठा या इज्जत सम्हालने या फर्ज अदा करनेका खयाल हमे भयवश न होनेकी शक्ति देता है। इस अवस्थामे मनुष्यकी अपनी प्रतिष्ठा या कर्तव्य-बुद्धिकी कल्पना जितनी तीव्र होगी, उतने ही अशमे वह भयको जीत सकता है। जिस क्षण जोखिम या खतरेकी अपेक्षा इज्जत या फर्ज़की कीमत कम महसूस होने लगती है, उसी क्षण उसकी हिम्मत जवाब दे देती है। इसलिए स्वाभिमान, प्रतिष्ठाकी रक्षा और कर्तव्य-निष्ठाकी भावनाकी उचित रीतिसे दी हुई तालीम भी भयको जीतनेका उपयुक्त साधन है।

इसी तरह योग्य सोहवत भी निर्भयता प्राप्त करनेका साधन है। अकेले ही कोई जोखिम उठानेकी हिम्मत न ‘ब’ मे हो न ‘प’ मे। लेकिन अगर जोखिम उठानेकी इच्छासे दोनो कधेसे कधा लगाकर खडे हो जायँ, तो दोनोकी हिम्मत बढ सकती है। फिर स्वतत्र रूपसे काम करनेकी हिम्मत भी आ सकती है। मगर यदि वे दोनों जोखिमसे बचनेकी ही फिक्रमे रहनेवाले हो, तो दोनों एक-दूसरेके साथ होने पर ज्यादा कायर भी बन सकते है।

५

भयको कोई नही चाहता

पुराने मानस-शास्त्रियोने आहार, निद्रा, भय और काम, इन चार भावोको प्राणिमात्रका कुदरती धर्म माना है। अर्वाचीन मानस-शास्त्रियोने छह या ज्यादा भाव माने है। ऊपरके परिच्छेदोमे हमने भयके मनुष्यगत स्व-रूपको खोजनेका प्रयत्न किया। सभव है कि इस शोधमे कुछ विचार करने लायक बाते छूट गयी हो। लेकिन जितना विचार किया, उस परसे जान पडता है कि भय मनुष्यका ऐच्छिक स्वभाव नही है, याने कोई मनुष्य भयके

अधीन रहना नही चाहता, बल्कि जहाँ तक उसका वग चले उसे हटाना चाहता है। उसकी भीतरी वृत्ति निर्भयता प्राप्त करनेकी ही होती है। उसकी इच्छाके विरुद्ध भय उस पर हमला करता हे और अगर भयको हटानेकी तरकीव उसे मालूम न हो, तो उसकी इच्छा-शक्तिको कमजोर करके उसे भयमे रखनेका रव्त भी करा सकता है। लेकिन चाहे कितना भी अभ्यास क्यो न हुआ हो, भयको वह कभी अच्छी चीज नही मान सकता। किसी आदमीको कोई जीर्ण रोग हो जाय और वह उसे वरदाग्त कर लेनेकी आदत कर ले, उसी तरहकी यह भी बात है। वह रोगको वरदाश्त कर लेता है, उसके अनुरूप अपना जीवन भी वना लेता हे, उसे हटानेका प्रयत्न छोड देता है और उस परिस्थितिमे भी हँसता-खेलता और आनन्द प्रकट करता है और वूढा भी होता है। मगर फिर भी वह यह कभी नही कहेगा कि वह रोग अच्छी चीज है। अुसे यह पूरा पूरा यकीन है कि रोग एक विकार है। वह सिर्फ गरीरको ही लग सकता है, वह आत्मधर्म नही है। इसी तरह भय भी गरीरके ज्ञान-ततुओमे होनेवाली वाहरी अव्यवस्था या गडबडी है, उसी तरहकी जैसी कि टेलिफोनोके मेल (कनेक्शन) मे कभी कभी हो जाती है। वह आत्मगत नही है। मनुष्य आहार, काम और निद्रामे सुख मानता हुआ इच्छापूर्वक उन्हे वढानेकी कोगिश कर सकता है। उनके कम होनेसे या न मिलनेसे व्याकुल भी हो सकता है। पर ऐसा आदमी कभी नही पाया जायगा जो अपनी भयवृत्तिको दिलचस्पीसे वढानेकी कोशिश करता हो। वह किमी मतलवसे दूसरेकी भयवृत्ति जानबूझकर वढानेकी कोशिश कर सकता है, पर अपने भयको तो वीमारीकी तरह हटानेकी ही इच्छा करेगा ।

भयका ज्ञान और भयवृत्ति

खतरेके सम्भवके भान और भयवृत्तिमे भेद है। 'इस रास्ते पर चोर-डाकुओमे मुटभेड होना मुमकिन है, उस जगलमे वाघ-शेर होनेकी सभावना है, वरसातमे धानके खेतमे साँपोका डर है, अूँचे झरोखेमे से झाँकनेमे गिरनेकी सभावना है, इस शहर पर दुश्मनकी चढाईका अन्देशा है'—आदि विचार पिछले अनुभवोंकी शिक्षाके परिणाम हैं। उनमे हानि पहुँचानेवाली परिस्थितियोंकी जानकारी है। यह एक जरूरी चीज है। वह न हो तो मनुष्य सावधान नही रहेगा और सदा दुर्घटनाओका शिकार वनेगा। अक्सर परिस्थितिके ज्ञानको ही भयका नाम दे दिया जाता है और कहा जाता है कि भय भी प्राणीकी आत्मरक्षाके लिए अुसे प्रकृतिसे मिली हुई एक हितकर और जरूरी वृत्ति है।

लेकिन भयवृत्ति और हानिकर परिस्थितिके ज्ञानमे फर्क है। यदि हमें हानिकर परिस्थितिका सिर्फ ज्ञान हो, पर भयवृत्ति न हो, तो हम उस परिस्थितिका सामना करनेका इलाज खोजेगे, सचेत रहेगे, किसी साधनकी जरूरत हो तो उसे रखेगे, पर उससे कॉपेगे नही, घबडाकर खतरेकी जगह न जानेकी अथवा उससे पहले ही वहाँसे भागनेकी नही सोचेगे। ये सब भयके लक्षण है। इस वृत्तिको कभी हितकर और जरूरी नही माना जा सकता। यदि मनुष्यमे यही वृत्ति बलवान होती, तो मनुष्य-जाति जगतमे शायद ही जिन्दा रह सकती और प्राणिमात्र पर प्रभुत्व तो हरगिज नही पा सकती। खतरेका ज्ञान होते हुए भी उसका सामना करनेके निश्चयमे ही मनुष्य-जातिका विकास और वृद्धि हुई है और मनुष्य एक तरहका छोटा-सा परमेश्वर ही बन गया है।

तब इतना साफ है कि खतरेकी परिस्थितिका ज्ञान चाहे जितना हितकर और जरूरी क्यो न हो, उसका डर न तो हितकर है और न जरूरी, बल्कि भयके वश होना रोगके वश होनेके ही बराबर है। आहार, निद्रा और कामकी वृत्तियोंसे भयकी बराबरी करना ठीक नही है। मनुष्यके लिए जो चीज़ जरूरी है, वह तो है खतरेकी परिस्थितिकी जानकारी और उसका साध्य है उस परिस्थितिका मुकाबिला करनेके उपायकी खोज।

६

तीन किस्मके खतरे

जब हम खतरोका विचार करते है, तो उनके तीन बडे विभाग हो जाते है — मनुष्यको मनुष्यसे पैदा होनेवाले खतरे, दूसरे प्राणियोमे होनेवाले खतरे और कुदरती घटनाओसे पैदा होनेवाले खतरे।

भूकप, बाढ, आग आदि कुदरती खतरोके बारेमे प्राय डरनेवाले और न डरनेवाले स्वभावके मनुष्योकी स्थिति एक-सी ही होती है। डरनेवाला उनसे भाग नही सकता। जहाँ ये खतरे बार बार आते है, वहाँ हम पहले ही से कुछ तैयारी कर सकते है। लेकिन जब वे अकस्मात् आ पडते है, तब समय पर ही उनका मुकाबिला करना पडता है।

दूसरे प्राणियोसे प्राप्त होनवाले खतरोंके विषयमे मनुष्य विशेष स्वाधीन है। दूसरे जानवरोके बनिस्बत उसे ज्यादा सहूलियत है। दूसरे प्राणियोको कुदरतने जितने साधन दिये है और जो तरकीबे सिखायी है, केवल उतनी ही हासिल है, उनमे वे तरक्की नही कर सकते। उनका सामना करनेके

लिए मनुष्यने हजार तरहके साधन खोजे है और अधिक खोजनेकी शक्ति रखता है।

लेकिन मनुष्यको मनुष्यसे होनेवाले खतरोकी समस्या जटिल है। यहाँ खतरा उपस्थित करनेवाला पक्ष और उससे बचनेकी कोशिश करनेवाला पक्ष दोनो प्रगतिशील प्राणी हैं। यानी अगर एक पक्ष एक साधन तैयार करे, तो दूसरा उससे बढिया साधन खोज सकता है। और जो नही खोज सकता वह भयत्रस्त हो जाता है। जब तक भयका सिर्फ ज्ञान है लेकिन उसके सामने मजबूरी या विवशता महसूस नही होती, तब तक आदमी उससे त्रास नही पाता और पुरुषार्थ-हीन नही बनता। लेकिन जब वह त्रास पाता है तब वह निर्बल हो जाता है। फिर वह भय पहुँचानेवालेकी शरण लेता है और उसकी आज्ञा शिरोधार्य मानता है, अपमान सह लेता है और जो कष्ट दिये जायँ उन्हे बरदाश्त कर लेता है।

मानवताका रोग

इस तरह एक दूसरेको डराना और डरना, और नुकसान पहुँचाने तथा नुकसानसे बचनेके अुपायोकी निरतर खोज करते रहना मानव-जीवनका रोग हो गया है। यह रोग इतना व्यापक हुआ है कि जिस तरह अस्पतालों और औषधालयोकी सख्या तथा मरीजोकी सख्या और दवाइयोंके प्रकारकी वृद्धि अकसर गौरव और सभ्यताकी प्रगतिका लक्षण मानी जाती है, उसी तरह मारने और डराने तथा बचनेके साधनोकी वृद्धि भी प्रगतिका लक्षण मानी गयी है।

लेकिन आखिर नतीजा क्या होता है? गुजरातीमे अेक कहावत है, 'कोतवालकी दो आँखे, चोरकी चार आँखे।' अर्थात् आक्रमणके साधन बचावके इलाजोको हमेशा मात कर सकते है। इसलिए जहाँ तक मनुष्यका मनुष्यसे सबध है, बाह्य साधन अजाममे भयका निवारण करनेमे असमर्थ ठहरते है और अपनी रक्षाके लिए उन पर भरोसा रखना आखिर कच्चा बन्दोबस्त साबित होता है।

एक तरहसे मनष्य दूसरे जानवरोंकी अपेक्षा होशियार है। लेकिन उसकी होशियारीने उसे प्रकृतिसे दो तरहसे जुदा कर दिया है — याने ज्यादा सस्कृत और ज्यादा विकृत भी। ये सस्कृति और विकृति दोनो अेक-दूसरेमे ऐसी ओतप्रोत है कि अकसर दोनो एक ही जगह पायी जाती है। शायद सस्कृतिका सच्चा स्वरूप हमे अब तक नही मिल सका है और सस्कृतिके नामसे हम बहुत-सी विकृतियोको ही बढाते है।

जो हो; इतना निश्चित है कि प्राकृत या असभ्य मानव जातियोंमें जो अपूर्णता पायी जाती है, उसकी अपेक्षा अपनेको संस्कृत या सभ्य माननेवाले मनुष्योंकी असभ्यता कम नहीं होती। बल्कि, संस्कृतिका टीला जितना ऊँचा होता है, उतना ही विकृतिका गड्ढा भी गहरा होता जाता है और इसीलिए सभ्य जातियाँ सब प्रकारके दुर्गुणोंमें भी प्राकृत जातियोंकी अपेक्षा बढ़ी-चढ़ी होती हैं।

इसीलिए मनुष्यको मनुष्यकी तरफसे खतरा उपस्थित होता है और उसकी बहुत-सी शक्ति दूसरे मनुष्योंसे बचने तथा जरूरतके वक्त उन्हें परेशान करनेके साधन खोजनेमें ही खर्च हो जाती है। एक-दूसरेका नाश मनुष्योंके संकल्पोंमें से एक महत्त्वका संकल्प बन बैठा है और मार्मिक बीमारीकी तरह बीच बीचमें जोर पकड़ता है।

बाह्य साधनोंकी व्यर्थता

जब तक आत्मरक्षाके लिए हमारा भरोसा मारने और बचनेके बाह्य साधनों पर है, तब तक यह अनर्थ-परम्परा मिट ही नहीं सकती और हम निर्भयता हासिल ही नहीं कर सकते। भयवृत्ति या त्रासवृत्तिको कुछ समय और कुछ हद तक छिपा या दबा सकते हैं, पर जिस क्षण यह साबित हो जाता है कि हमारा मारने और बचनेका साज-सामान बेकार है, उस क्षण बहादुरसे बहादुर सेनापति और सिपाहियोंको शरण जानेका रास्ता ही लेना पड़ता है और अपने भविष्यके लिए शत्रुकी कुलीनता, उसकी असली संस्कृति तथा स्वयं अपने पुराने व्यवहारों द्वारा बतायी हुई सभ्यता पर ही भरोसा करना पड़ता है। अनुभव यह है कि ऐसी परिस्थिति आने पर शत्रुकी शराफत और उसकी असली संस्कृतिका जाग्रत होना इस बात पर निर्भर नहीं है कि हमारे पास कितने अंशमें अच्छे अच्छे साधन थे और उनका हमने किस दर्जे तक उपयोग किया, बल्कि इस बात पर है कि हमारे पास भरपूर साधन न होते हुए भी हमने कितनी निर्भयता यानी त्रस्त न होनेकी वृत्तिसे खतरेका सामना किया।

उपसंहार

इस सारी विचारधारासे नीचे लिखे नतीजे निकलते हैं :—

१. कुदरत और दूसरे जानवरोंसे पैदा होनेवाले खतरोंसे मनुष्य एक हद तक बाह्य साधनों द्वारा अपनी रक्षा कर सकता है। लेकिन वहाँ भी

इन खतरोकी आदत डालनी ही पडती है। प्राणियोसे पैदा होनेवाले खतरेके लिए उसका अपना सद्‌व्यवहार भी काम आता है।

२ मनुष्यकी तरफसे पैदा होनेवाले खतरोके लिए वाह्य साधनोकी मदद करीव करीव बेकार है और वह शक्तिका अपव्यय है। परस्पर अविश्वास रहते हुए निर्भयता हासिल हो ही नही सकती और न वह खतरेसे भाग जानेकी वृत्तिसे ही हासिल हो सकती है। निर्भयता तो अविश्वासका कारण होते हुए भी विश्वास रखनेसे, खतरोका मुहावरा कर लेनेसे तथा अपने सद्‌व्यवहारोसे ही बढती है। यह केवल निर्भयता और शूरता बढानेका ही तरीका नही है, वल्कि स्व-रक्षा और मानव-जातिकी सस्कृतिके विकासका भी यही साधन है।

चोरी, सेध लगाना, लूटपाट, अत्याचार, लाठी-बल्लम, तलवार, वन्दूक, तोप, वम, हवाई-जहाज वगैरा स्वजातिका नाश करनेके हजारों प्रकारके एक-से-एक वढिया साधन, और ताला, दरबान, पुलिस, जेल, फाँसी, ढाल, किले, खाइयाँ (ट्रेंच), हवाई जहाज तोडनेवाली तोपे, बुरके (मास्क्स) वगैरा उतने ही प्रकारके वचनेके साधन तैयार करनेमे मनुष्य-जाति अपने आदि कालसे आज तक अपनी वुद्धि-शक्ति और धन लगाती आयी है। इसमे शक नही कि इनमे से कुछ साधनोकी बदौलत कुदरत और दूसरे प्राणियोसे पहलेकी अपेक्षा अब वह ज्यादा सुरक्षित हो गयी है। परतु मनुष्योके आपसी सवधमे वह और भी ज्यादा कीचडमे फँसती गयी है और वे-खतरेकी हालत प्राप्त नही कर सकी है और न कभी कर सकती है। क्योकि उलटे रास्तेसे कितने ही दूर चलने पर भी मुकाम पर नही पहुँचा जा सकता। मानव-जातिके लिए परस्पर अविश्वास, उसके कारण प्रस्तुत किये हुए साधन, असद्-व्यवहार और खतरेकी कल्पना ही भय है। अविश्वासका कारण होते हुए भी विश्वासका सकल्प, खतरेका सामना करनेका अभ्यास और अपने सद्‌व्यवहारसे पैदा होनेवाला आत्मविश्वास— यही निर्भयता प्राप्त करनेका उपाय है। इसमे स्वाभिमान, इज्जत और कर्तव्यकी भावना तथा उचित सगतिसे सहायता मिलती है।

कृष्ण-भक्तिका रोग

[आचार्य विनोबा भावे]

['भूमिदान' आन्दोलनके जन्मदाता आचार्य विनोबा भावे महाराष्ट्रके सत हैं। कअी वर्षों तक साबरमती आश्रममे आप गाधीजीके साथ रह चुके है। आप बीस भाषाओंके जानकार है। सस्कृत और अरबी पर आपका अच्छा अधिकार है। सन् १९४० मे 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' के समय महात्माजीने आपको पहला सत्याग्रही चुनकर आपकी शक्तिका परिचय देशको कराया था।

'सर्वोदय' मासिकमे आप हिन्दीमे लिखते रहते थे। आपके लेख बडे असरकारक और मार्मिक होते है। आप अहिंसक ढगसे समाज सुधारके हामी हैं।

वर्धाके पास पवनारमे आपका आश्रम है। आप लेखक है, चिंतक हैं और मौलिक विचारक है। आजकल आप भूमिदान आन्दोलनमे जुटे हुए है।]

'दुनिया पैदा करे' ब्रह्माजीको यह इच्छा हुई। इसके अनुसार कार-बार शुरू होनेवाला ही था कि कौन जाने कैसे उनके मनमे आया कि 'अपने काममे भला-बुरा कहनेवाला कोई रहे तो बडा आनन्द आवेगा,' इसलिए आरभमे उन्होंने एक तेज-तर्रार टीकाकार गढा। और उसे यह अख्तियार दिया कि अब मैं जो कुछ गढूंगा उसकी जाँचका काम तुम्हारे सिपुर्द है। इतनी तैयारीके बाद ब्रह्माजीने अपना कारखाना चालू किया। ब्रह्माजी एक-एक चीज बनाते जाते और टीकाकार उसकी चूक दिखाकर अपनी उपयोगिता सिद्ध करता जाता। टीकाकारकी जाँचके सामने कोई चीज 'बे-ऐब' नही निकल पाती। "हाथी ऊपर नही देख पाता, ऊँट ऊपर ही देखता है, गदहेमे तेजी नही है, बन्दरमे शान्ति नही है।" यो टीकाकारने अपनी टीकाके तीर छोडने शुरू किये। ब्रह्माजीकी बुद्धि चकरा गई। फिर भी उन्होंने एक आखिरी कोशिश करनेकी ठानी और अपनी सारी कारीगरी खर्च करके 'मनुष्य' गढ निकाला। टीकाकार उसे निरखने लगा। अन्तमे एक चूक निकाल ही दी। "इसकी छातीमे एक खिडकी होनी चाहिए थी, जिससे इसके विचार सब समझ पाते।" ब्रह्माजी बोले "तुझे रचा यही मेरी एक चूक हुई, अब मै तुझे शकरजीके सिपुर्द करता हूँ।"

यह एक पुरानी कहानी कही पढी थी। इसके बारेमे शका करनेकी सिर्फ एक ही गुजाइश है। वह यह कि कहानीके वर्णनके अनुसार टीकाकार

शकरजीके सिपुर्द हुआ नही दीखता। शायद ब्रह्माजीको उस पर रहम आ गया होगा या शकरजीने उस पर अपनी शक्ति नही आजमाई होगी। चाहे जैसे हो, इतना सच है कि आज उसकी जाति बहुत फैली हुई पाई जाती है। गुलामीके जमानेमे कर्तृत्व बाकी न रह जाने पर वक्तव्यको मौका मिलता है। कामकी बात खत्म हुई कि बातका काम! और बोलना ही है तो नित्य नये विषय कहाँसे खोजे जाये? इसलिए एक सनातन विषय चुन लिया गया, —"निन्दा-स्तुति जनकी। वार्ता वधू-धनकी।" पर निन्दा-स्तुतिमे भी तो कुछ बाँट-बखरा रहना चाहिए। निन्दा अर्थात् पर-निन्दा और स्तुति अर्थात् आत्म-स्तुति। ब्रह्माजीने टीकाकारको भला-बुरा देखनेको तैनात किया था। उसने निजका अच्छा देखा। ब्रह्माजीका बुरा देखा। मनुष्यके मनकी रचना कुछ ऐसी चमत्कारी है कि दूसरेके दोष उसको जैसे उभरे हुए साफ दिखाई देते है वैसे गुण नही दिखाई देते। सस्कृतमे 'विश्व-गुणादर्श-चपू' नामका एक काव्य है। वेकटाचारी नामके एक दाक्षिणात्य पडितने लिखा है। उसमे कल्पना है कि कृशानु और विभावसु नामके दो गधर्व विमानमे बैठकर फिरते है, और जो जो उन्हे दिखाई देता है उस विषयकी चर्चा करते रहते है। कृशानु दोष-द्रष्टा है, विभावसु गुण-ग्राहक है। दोनों अपनी-अपनी दृष्टिसे वर्णन करते है। गुणादर्श अर्थात् 'गुणोका दर्पण' यह इस काव्यका नाम रखकर कविने अपना निर्णायक मत विभावसुके पक्षमे दिया है। तथापि सारे वर्णनके रग-ढगका ठाट कुछ ऐसा है कि अन्तमे पाठकके मन पर कृशानुके मतकी छाप पडती है। गुण लेनेके इरादेसे लिखी हुई चीजकी तो यह दशा है। फिर दोष देखनेकी वृत्ति होती तो क्या हाल हुआ होता?

चन्द्रकी भाँति प्रत्येक वस्तुके शुक्ल-पक्ष और कृष्ण-पक्ष होते है। इसलिए टीकाखोर मनको यथेच्छ विचरनेमे कोई बाधा आनेवाली नही है। 'सूर्य दिनमे दिवाली करता है तो रातको तो अँधेरा ही देता है' इतना कहने भरसे उस सारी दिवालीकी होली हो जायेगी। उसमे भी अवगुण ही लेनेका नियम बना लिया जाये तो दो दिनोंमें एक रात न दिखकर एक दिनके मुकाबिलेमे दो राते दिखेगी। फिर अग्निकी ज्योतिकी ओर ध्यान न जाकर धुएँसे अग्निका अनुमान करनेवाले न्याय-शास्त्रका निर्माण होगा। भगवान्ने यह सब मौजे गीतामे बतलाई है। अग्निका धुआँ, सूर्यकी रात अथवा चद्रका कृष्ण-पक्ष देखनेवाले 'कृष्ण-भक्तो'का उन्होने स्वतत्र वर्ग रखा है। दिनमे आँखें बन्द की तो अँधेरा और रातको आँखे खोली तो अँधेरा;

स्थितप्रज्ञकी इस रीतिके अनुसार इन लोगोंका कार्यक्रम है। पर भगवान्ने स्थितप्रज्ञके लिए मोक्ष बतलाया है, और इनके लिए बडी-से-बडी दुर्गति। पर इतना होने पर भी यह सम्प्रदाय छुतहे रोगकी तरह बढ रहा है। पुतली काली होनेकी वजहसे या काले रगमे आकर्षण अधिक होनेकी वजहसे काला पक्ष जैसा हमारी आँखोमे खुलता है वैसा उज्ज्वल पक्ष नही खुलता। ऐसी स्थितिमे यह साम्प्रदायिक रोग किस औषधिमे अच्छा होगा, यह जान रखना जरूरी है।

पहली दवा है चित्तमे धँसी हुई इस 'कृष्ण-भक्ति' को बाहरी कृष्णके दर्शन न कराये, अन्दरुनी कृष्ण दिखाये। लोगोकी कालिख देखनेकी आदी निगाहको मनके भीतरका कालापन दिखाये। विश्वके गुण-दोष जाँच कर देखनेवाला मनुष्य बहुधा खुदको निर्दोष मान बैठता है, उसका यह भ्रम दूर होने पर उसकी परीक्षाकी नगी तलवार अपने-आप भुथरी पड जाती है। बाअिबलके नये करारमे इस बारेमे एक सुन्दर प्रसगका उल्लेख है— एक बहनसे कोई बुरा काम बन गया। पच लोग बैठे जाँच और इन्साफके लिए। कहना नही होगा कि काफी तादादमे तमाशाई भी जुट गये थे। पर उस बहनके सद्भाग्यसे भगवान् ईसा भी वहाँ पधार गये थे। पचोने हुक्म सुनाया 'इस बहनने भारी कसूर किया है। सब लोग पत्थरोसे मार-मारकर उसे मार दे।' फैसला सुनते ही लोगोके हाथ खुजाने लगे और अडोस-पडोसके ढेले थर-थर काँपने लगे। भगवान् ईसाके मनमे उन ढेलो पर करुणा उत्पन्न हुई। उन्होने खडे होकर सबको एक ही बात कही, 'जिसका मन बिलकुल साफ हो, वह पहला ढेला मारे।' जमात जरा देरके लिए ठिठक गई। फिर धीरे-धीरे वहाँसे एक-एक आदमी सरकने लगा। अन्तमे वह अभागी बहन और भगवान् ईसा यह दो ही रह गये। उन्होने उसे थोडा समझाया और प्रेमका सदेशा दिया। यह कहानी हमेशा ध्यानमे रखनी चाहिए।

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न दीखा कोय।
जो घट खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।।

दूसरी दवा है मौन। दूसरेके दोष दिखे ही नही इसके लिए पहली दवा है। निगाह-फेरसे दोष दिखनेके बाद यह दूसरी दवा खास तरहसे उपयोगी है। इससे मन भीतर ही भीतर तडफडायेगा। दो-चार दिन नीद भी कम पड जायगी। पर आखिरमे थककर मन शात हो जायगा। तानाजीके गिर जाने पर मावलोके पीठ दिखानेके रग दिखाई पडने लगे। तब

जिस रस्सीकी मददसे वह गढ पर चढे थे और जिसकी मददसे अब वह उतरनेका प्रयत्न करनेवाले थे वह रस्सी ही सूर्याजीने काट डाली। "वह रस्सी मैंने सिरेसे काट दी है" सूर्याजीके इस एक वाक्यने लोगोमे निराशाकी वीरश्री पैदा कर दी और गढ सर हो गया। रस्सी काट डालनेका तत्त्वज्ञान वहुत ही महत्त्वका है। इसपर अलगसे लिखनेकी जरूरत है। इस वक्त तो इतनेसे ही मतलब है कि मौन रस्सी काट देने जैसा काम कर देता है। दूसरेके दोष देखना भूल जा, नही तो वैठकर तडफडाता रह, मन पर यह नौवत आ जाती है। और यह हुआ नही कि सारा मार्ग सरल हो जाता है। कारण, जिसको जीना है उसके लिए वहुत समय तक तडफडाते वैठना सुविधाजनक नही होता।

तीसरी दवा है, कर्म-योगमे मग्न हो रहना। जैसे आज सूत कातना यह अकेला ही ऐसा उद्योग है कि छोटे-वडे सवको काफी हो सकता है, वैसे ही कर्म-योग यह एक ही ऐसा योग है कि जिसकी सर्वसाधारणके लिए वेखटके सिफारिश की जा सकती है। किंवहुना, सूत कातना ही आजका कर्म-योग है।

यह सूत कातनेका कर्म-योग स्वीकार किया कि लोक-निंदा करते रहनेके लिए फुर्सत ही नही रहती। जैसे किसान अन्नके दाने-दानेकी असली कीमत समझता है, वैसे ही सूत कातनेवालेको एक-एक क्षणके महत्त्वका पता चलता है। "क्षणभर भी खाली न जाने दे," समर्थकी यह सूचना अथवा "क्षणार्ध भी व्यर्थ न खो," नारदका यह नियम जो कहता है वह सूत कातते हुए अक्षरश ध्यानमे आता है। कर्म-योगका सामर्थ्य अद्भुत है, उसपर जितना जोर दिया जाये कम है। यह मात्रा अनेक रोगो पर लागू है, पर जिस रोगकी उपाय-योजना इस समय जारी है, उसपर उसका अद्भुत गुण अनुभवमे उतरा हुआ है।

तीन दवाएँ वताई गई है। तीनो दवाएँ रोगियोकी जीभको कडुई तो लगेंगी, पर परिणाममे वह अतिशय मधुर है। आत्म-परीक्षणसे मनका, मौनसे वाणीका और कर्म-योगसे शरीरका दोष झडे विना आत्माको आरोग्य नही मिलनेवाला है। इसके लिए कडुई कहकर दवासे किनाराकशी नही की जा सकती। इसके सिवा यह दवा शहदके साथ लेनेकी है, जिससे इसका कडुआपन दूर हो जायगा। सव प्राणियोमे भगवद्भाव होना यह मधु है। उसमे मिलाकर यह तीन मात्राएँ निगल जानेसे सव मीठा हो जायेगा।

१५

सूखी डाली

[श्री उपेन्द्रनाथ अश्क]

[आपका जन्म १९१० ई० मे जालधरमे हुआ। बी० ए० पास करके आप स्कूलमे अध्यापक हो गए पर इस जीवनसे आप जल्दी ही ऊब गए। लाहोर जाकर आप उर्दूके पत्र-पत्रिकाओके सपादकीय विभागोंमें काम करते रहे। वकील बन जाने पर भी वकालत करना आपको जँचा नही। आपने पहले उर्दूमे और फिर हिन्दीमे कहानियाँ लिखनी शुरु की। इस क्षेत्रमें आपको काफी सफलता मिली। कहानियोके अतिरिक्त उपन्यास, नाटक और एकाकी लिखनेमे भी आप सिद्धहस्त है। आपकी प्रसिद्ध पुस्तके ये है' कहानी सग्रह—'पिजरा', 'जुदाईकी शामके गीत'। उपन्यास—'गिरती दीवारे', 'सितारोके खेल'। नाटक—'जय पराजय', 'स्वर्गकी झलक'। एकाकी संग्रह—'पर्दा उठाओ, गिराओ।']

पुरुष-पात्र	स्त्री-पात्र
दादा	बेला (छोटी बहू)
कर्मचन्द	छोटी भाभी (बेलाकी सास, इन्दुकी माँ)
परेश	मँझली भाभी
भाषी	बडी भाभी
मल्लू	मँझली बहू
	बडी बहू
	रजवा
	पारो

पहला दृश्य

[मानव प्रगतिके इस युगमे जब व्यक्तिगत-स्वतत्रताको अराजकताकी हद तक महत्त्व दिया जाता है और तानाशाहीको 'सभ्य' समाजमे अत्यत निन्दनीय माना जाता है, दादा मूलराज अपने समस्त कुटुम्बको एक यूनिट (Unit) बनाये, उस पर पूर्ण रूपसे अपना प्रभुत्व जमाये, उस महान वटकी भाँति अटल खडे है, जिसकी लबी-लबी डालियाँ उनके आँगनमें एक

बडे छातेकी भाँति धरतीको आच्छादित किये हुए, अगणित घोंसलोंको अपने पत्तोंमें छिपाये, वर्षोंसे तूफानों और आँधियोंका सामना किये जा रही है।

वर्षों इस वटकी संगतिमें रहनेके कारण दादा वट ही की भाँति महान दिखाई देते हैं। आयुकी ७२ सर्दियाँ देख लेने पर भी उनका शरीर अभी तक नहीं झुका और उनकी सफेद दाढ़ी वटकी लंबी-लंबी दाढ़ियोंकी भाँति उनकी नाभिको छूती हुई मानो धरतीको छूनेका प्रण किये हुए है।

दादाका बड़ा लड़का १९१४ के महायुद्धमें सरकारकी ओरसे लड़ते-लड़ते काम आया था। इसके बदलेमें सरकारने दादाको एक मुरब्बा जमीन दी थी। किंतु दादा सरकारकी इस कृपा ही पर संतुष्ट नहीं रहे। अपने साहस, परिश्रम, निष्ठा, दूरदर्शिता और रसूखसे उन्होंने एकके दस मुरब्बे बनाये। उनके दो बेटे और पोते, जमीन, फार्म डेअरी और चीनीके उस कारखानेके कामकी देखभाल करते हैं, जो उन्होंने हाल ही में अपनी जमीनमें लगाया है। सबसे छोटा पोता अभी-अभी नायब तहसीलदार होकर इसी कस्बेमें लगा है। और कुछ ही दिन हुए उसका विवाह लाहोरके एक प्रतिष्ठित तथा सम्पन्न कुलकी सुशिक्षित लड़कीसे हुआ है।

उनके छोटे पोते परेशका नायब तहसीलदार और उनकी छोटी पोतोहू का सुशिक्षित होना अपनेमें दो महत्त्वपूर्ण बातें हैं। पहलीसे सरकारी हलकोंमें उनकी प्रतिष्ठा और भी बढ जानेकी संभावना है, गाँवमें उनका और भी आदर होने लगा है, किन्तु साथ ही दूसरीसे उनके परिवारके लिए संकट भी उपस्थित हो गया है। उनकी तीनों बहुएँ जो घरमें बडी भाभी, मँझली भाभी और छोटी भाभीके नामसे पुकारी जाती हैं, सीधी-सादी महिलाएँ हैं। उन सबमें उनकी पोती इन्दु ही (जिसने प्रायमरी स्कूलमें बड़ी सफलतापूर्वक शिक्षा पायी है) सबसे अधिक पढीलिखी समझी जाती है। घरमें उसकी चलती भी खूब है और दादा अपनी इस पोतीसे प्यार भी बहुत करते हैं; किंतु इस ग्रैजुएट छोटी पोतोहू (जो घरमें छोटी बहूके नामसे पुकारी जाती है) के आनेसे कुटुम्बके इस तालाबमें इस प्रकार लहरें-सी उठने लगी हैं जैसे स्थिर पानीमें बडीसी ईंट गिरनेसे पैदा हो जाती हैं।

पर्दा इमारतके बरामदेमें खुलता है। वास्तवमें यह बरामदा घरकी स्त्रियोंकी रांदेवू (Rendezvous) सम्मिलन-स्थल है। दिन भर इसमें कोलाहल मचा रहता है। कभी घरकी स्त्रियाँ यहाँ धूप लेती हैं, कभी चरखे कातती हैं, कभी गप्पें उडाती हैं; कभी लडती-झगडती हैं, और कुछ न हो तो स्नानागारमें पडे कपडे ही धोया करती हैं। यह स्नानागार बाहरके आहातेमें

है। दायी दीवारके कोनेमे जो दरवाजा है, उसके साथ ही बाहरको। रसोई आदिसे निवटकर दोपहरके बाद, घरकी दो चार स्त्रियाँ प्राय रोज़ वहाँ कपडे धोया करती हैं और निरतर 'थप-थप' 'थप-थप' की ध्वनि इस बरामदेमे गूँजा करती है।

सामनेकी दीवारके बाये कोनेमे एक छोटी-सी गैलरी है जिसमे (दोनो ओर आमने-सामने) पहले मँझली बहू और बडी बहूके कमरे हैं (जिनकी खिडकियाँ बरामदेमे खुलती हैं), फिर मँझली भाभी और बडी भाभीके। छोटी भाभीका कमरा (जो इन्दुकी माँ और छोटी बहू बेलाकी सास है) दायी ओर है। छोटी बहूका कमरा ऊपरकी छत पर है और बायी दीवारमे सीढियाँ बनी हैं, जो ऊपरको जाती हैं।

सामनेकी दीवारके साथ, गैलरीके इधरको दो तख्त बिछे हैं। दो एक चारपाइयाँ दीवारके साथ खडी हैं। एक पुराने फैशनकी बडी आराम-कुर्सी भी सामनेकी दीवारके साथ लगी हुई है।

दोपहर होनेमे अभी काफी देर है। अत. बरामदेमे अपेक्षाकृत निस्तब्धता है; केवल गैलरीसे स्त्रियोके जल्दी जल्दी बातें करनेकी आवाज़ आ रही है। पर्दा उठनेके कुछ क्षण पश्चात् इन्दु तेज़ तेज़ गैलरीसे निकलती है और बिफरी हुई-सी दायी तरफके तख्त पर बैठ जाती है। उसके पीछे-पीछे बडी बहू शात स्वभावसे चलती हुई आती है। इन्दुकी भृकुटी चढी है और बडी बहू शान्त और गम्भीर है।]

बडी बहू — (इन्दुके कधो पर अपने दोनो हाथ रखते हुए) आखिर कुछ कहो भी। क्या कह दिया छोटी बहूने?

इन्दु — (चुप)

बडी बहू — क्या कह दिया उसने जो इतनी बिफरी हुई हो?

इन्दु — (क्रोधसे) और क्या ईंट मारती?

बडी बहू — कुछ कहो भी . . .

इन्दु — मेरे मायकेमे यह होता है, मेरे मायकेमे यह नही होता। (हाथ मटकाकर) अपने और अपने मायकेके सामने तो वह किसीको कुछ गिनती ही नही। हम तो उसके लिए मूर्ख, गँवार और असभ्य हैं।

बडी बहू — (आश्चर्यसे) क्या . .

इन्दु — बैठकके बाहर मिश्रानी खडी रो रही थी। मैंने पूछा तो पता चला कि बहूरानीने उसे कामसे हटा दिया है।

बडी बहू — (उसी आश्चर्यसे) कामसे हटा दिया है! भला क्या दोष था उसका?

इन्दु — दोष यह था कि उसे काम करना नही आता।

बडी बहू — (स्तम्भित) काम करना नही आता?

इन्दु — उस बेचारीने कहा भी कि मै दस पाँच दिनमे सब कुछ सीख जाऊँगी। भला कै दिन हुए है मुझे आपका काम करते? किन्तु बहूरानी न मानी। झाडन उन्होने उसके हाथसे छीन लिया और कहा कि हट तू, मै सब कुछ स्वय कर लूँगी। अभी तक इतना तो सलीका नही कि बैठक कैसे साफ की जाती है, पाँच दस दिनमे तू क्या सीख जायगी?

बडी बहू — सलीका नही ?

इन्दु — मैने जाकर समझाया कि भाभी दस सालसे यही मिश्रानी घरका काम कर रही है। घर भरकी सफाई करती है, बर्तन मलती है, कपडे धोती है। जाने तुम्हारा कौन-सा ऐसा काम है जो इससे नही होता। और फिर मैने समझाया कि भाभी नौकरसे काम लेनेकी भी तमीज होनी चाहिए।

बडी बहू — हाँ, और क्या . .

इन्दु — झटसे बोली, "वह तमीज़ तो बस आप लोगोको है।" मैने कहा, तुम तो लडती हो। मै तो सिर्फ यह कहना चाहती थी कि नौकरसे काम लेनेका भी ढग होता है। इस पर तुनककर बोली, "और वह ढग मुझे नही आता, मैने नौकर जो यही आकर देखे है!" फिर कहने लगी, "काम लेनेका ढग उसे आता है, जिसे कामकी परख हो। सुबह-शाम झाड़ू देने मात्रसे कमरा साफ नही हो जाता। उसकी बनावट-सजावट भी कोई चीज़ है। न जाने तुम लोग किस तरह इन फूहड नौकरोसे गुजारा कर लेते हो। मेरे मायकेमे तो ऐसी गँवार मिश्रानी दो दिन छोड, दो घडी भी न टिकती।"

बडी बहू — कही उसने ये सब बाते?

इन्दु — और कैसे कही जाती है — जबसे आयी है यही तो सुन रहे है — नौकर अच्छे है तो उसके मायकेमे, खाना-पीना अच्छा है तो उसके मायकेमे, कपडे पहननेका ढग आता है, तो उसके मायकेवालोको। हम तो न जाने कैसे जी रहे है। (नाक-भौ चढाकर) यहाँके लोगोको खाना-पीना, पहनना-ओढना कुछ भी नही आता। हमारे नौकर गँवार, हमारे पडोसी गँवार, हम स्वय गँवार . . .

बडी बहू — (चकित विस्मित, सिर्फ सुनती है)

इन्दु — मैंने भी कह दिया — क्या बात है भाभी तुम्हारे मायकेकी? एक नमूना तुम्हीं जो हो। एक मिश्रानी भी ले आती तो हम गँवार भी उससे कुछ सीख लेते।

[दायी दीवारके कमरेमे छोटी भाभी (इन्दुकी माँ और छोटी बहू बेलाकी सास) प्रवेश करती है। उसके पीछे-पीछे रजवा है।]

छोटी भाभी — क्यों इन्दु बेटी, क्या बात हुई — यह रजवा रो रही है, कोई कडुवी बात कह दी छोटी बहूने इसे?

इन्दु — मीठी वे कब कहती हैं जो आज कडुवी कहेंगी?

छोटी भाभी — यह आज तुम कैसी जली-कटी बाते कर रही हो? छोटी बहूसे झगडा हो गया है क्या?

रजवा — (भरे हुए गलेसे) माँजी आज उन्होंने बरबस मुझे कामसे हटा दिया . . . इतने बरस हो गये आपकी सेवा करते, कभी किसीने इस प्रकार अनादर न किया था। मुझे तो माँजी आप अपने पास ही रखिए। मैं आजसे उनका काम करने न जाऊँगी।

छोटी भाभी — वह तो बच्ची है मिश्रानी, तू भी उसके साथ बच्ची हो गयी?

इन्दु — (मुँह बिचकाकर व्यगसे) जी हाँ, बच्ची है! रोटीको चोची कहती है। उसे तो बात ही करनी नही आती। (क्रोधसे) अपने मायकेके सामने तो वह किसीको कुछ समझती ही नही और गज भरकी जबान . . .

बडी बहू — बात यह है छोटी माँ कि छोटी बहूको हमारा खाना-पीना, पहनना-ओढना कुछ भी पसन्द नही। उसे हमसे, हमारे पडोससे, हमारी हर बातसे घृणा है।

छोटी भाभी — (चिन्तासे) फिर कैसे चलेगा? हमारे घरमे तो मिल कर रहना, बडोका आदर करना, अपने घरकी रूखी-सूखीको दूसरोकी चुपडीसे अच्छा समझना, नौकरों पर दया और छोटो पर . . .

(मँझली बहू बाहरसे हँसती हुई प्रवेश करती है।)

मँझली बहू — खिहि . . खिहि खिहि हा हा हा. . .

इन्दु — क्या बात है भाभी, जो हँसीके मारे लोट-पोट हुई जा रही हो?

मँझली बहू — खिहि . . खिहि . . (हाथ पर हाथ मारती है) हा–हा — हा – हा – हा . . .

(गैलरीसे मँझली भाभी और बडी भाभी प्रवेश करती हैं।)

दोनों—क्या वात है जो आज इतनी 'हा हा, ही ही' हो रही है?

इन्दु—यह भाभी है कि वस हँसे जा रही है, कुछ वताती ही नही।

मँझली वहू—मैं कहती हूँ .

(फिर हँस पडती है)

वडी वहू—आख़िर कुछ कहो भी?

मँझली वहू—आज भाई परेशकी वह गत वनी कि वेचारे अपना-सा मुंह लेकर रह गये खिहि . हा–हा–हा–हा—हा–हा–हा...

छोटी भाभी—ओ हो, तुम्हारी हँसी भी वहू. . .

मँझली वहू—मैं क्या करूँ—मैं हँसीके मारे मर जाऊँगी। छोटी माँ! अभी-अभी छोटी वहूने परेशकी वह गत वनाई कि वेचारा अपना-सा मुंह लेकर दादाजीके पास भाग गया।

वडी वहू } इन्दु }—वात क्या हुई?

मँझली वहू—मैं तो उधर ऊपर सामान रखने गयी थी। वहुत वातें तो मैंने सुनी ही नही, वहुत समझ भी नही पायी। अग्रेजीमे गिटपिट कर रहे थे। छोटी वहूका पारा कुछ चढा हुआ था। इतना मालूम हुआ कि परेश स्नानकर कमरेमे गया तो वहूरानीने सारा फर्नीचर निकालकर वाहर रख दिया था। परेशने कारण पूछा। छोटी वहूने कहा, "मैं इन टूटी-फूटी कुर्सियो और गले-सडे फर्नीचरको अपने कमरेमे न रहने दूँगी।" परेश कहने लगा, "हमारे वुजुर्ग . वात काटकर छोटी वहूने कहा "हमारे वुजुर्ग तो नगे-वुच्चे जगलोमे घूमा करते थे तो क्या हम भी उनका अनुकरण करें?" (हँसती है) और जो सामान पडा था वह भी उठाकर वाहर फेंक दिया।

इन्दु—फिर . फिर . . .

मँझली भाभी—छोटी वहू. . .

छोटी भाभी—यह तो . . . .

मँझली वहू—परेशने कहा, "इस फर्नीचर पर हमारे दादा वैठते थे, पिता वैठते थे, चाचा वैठते थे। उन लोगोको कभी शर्म नही आयी, उन्होने कभी फर्नीचरके गले-सडे होनेकी शिकायत नही की। अव यदि मैं जाकर इसे रखनेपर आपत्ति करूँगा तो दादा कहेगे कि तहसीलदार होते ही लडकेका सिर फिर गया है। (हाथ मटकाकर) न भाई?

मँझली भाभी }
वडी भाभी } —हाँ, ठीक ही तो कहा परेशने।

छोटी भाभी—परेश . . मेरा वेटा भला

मँझली वहू—तव वहूने कहा, "तो न कहो—मै तो इस गले-सडे सामानको कमरेके पास तक न फटकने दूँगी। इस वेडौल फर्नीचरसे तो नीचे धरती पर चटाई विछाकर वंठे रहना अच्छा है। मेरे मायकेमे . ."

इन्दु—(क्रोधसे) वस, उसे तो अपने मायकेकी पडी रहती है चौवीसो घडी।

मँझली वहू—और छोटी वहूने अपने मायकेके वडे-वडे कमरो और उनके वहुमूल्य फर्नीचरका वखान किया (हँसती है) और महाशय परेशकी एक भी न चलने दी। वेचारे भीगी विल्ली वने दादाजीके पास चले गये—खि हि हि खि हि हि .

(हँसती है, दूसरी भी उसके साथ हँसती है।)

—मै तो चुपकेसे चली आयी (मुँह विचकाकर) जवान है छोटी वहूकी या कतरनी. . और फिर जव अग्रेज़ी वोलने लगती है तो कुछ समझमे ही नही आता। परेश वेचारा तो अपना-सा मुँह लेकर रह जाता है। जाने तहसीलदार कैसे वन गया!

इन्दु—बस जवान ही जवान है। वात तो तव हो जव काम भी हो। एक कामको कहो, तो सौ नाक-भौह चढाती है। दादाजीने चार कपडे धोनेको कहा था, वे तो पडे गुसलखानेमे गल रहे है।

छोटी भाभी—गुसलखानेमे गल रहे है! तू उठा क्यो न लायी उन्हे, जा भागकर उठा ला और फटककर आँगनमे डाल दे। मै वहूको समझा दूँगी—इस तरह कैसे चलेगा . . . (और भी चिन्तासे) . . . परेशने समझाया नही उसे?

इन्दु—परेशकी तो जैसे वहाँ वडी सुनवायी होती है!

मँझली वहू—वह मलमलके थान और अवरोकी वात याद है न—अभी तक पडे हुए है। कह-कह कर हार गये परेश महाशय। वहूरानीने हाथ तक न लगाया उन्हे और वे शरमके मारे ले जाते नही दादाजीके पास। कचहरीमे होगे तहसीलदार, परमे तो अभियुक्तोसे भी गये वीते हो जाते है।

(हँसती है, इन्दु और वडी वहू भी हँसती है।)

छोटी भाभी—पर दादाजीके कपडे. . .

वडी भाभी—तुम भी वहिन वस . . . क्या इतना पढ-लिखकर छोटी वहू कपडे धोयेंगी ?

इन्दु—क्यो ! उसके हाथ नमक मिट्टीके है जो गल जायँगे ?

(वाहरसे दादाके हुक्का गुडगुडानेकी आवाज आती है।)

छोटी भाभी—तुम चलो इन्दु—कपडे फटककर अहातेमे डाल दो। शायद उन्हे जरूरत हो। मांगेगे तो. . मै वहूको समझा दूंगी।

(पर्दा गिरता है)

दूसरा दृश्य

[वही वरामदा। दायी ओरके तख्त पर विस्तर विछा हुआ है। दीवारके साथ तकिया लगा है। दादा आरामसे तकियेके सहारे वैठे हुक्का पी रहे है। उनका मँझला लडका कर्मचन्द पास वैठा उनके पाँव दवा रहा है। हुक्का पीते-पीते दादा वच्चोको वाहर अहातेमे खेलते हुए देख रहे है। स्नान-गृहसे नलके जल्दी चलनेकी आवाज आ रही है। शायद कोई वच्चा उसे चला रहा है क्योकि कर्मचन्दकी भृकुटी तन गयी है।

पर्दा उठनेके कुछ क्षण वाद तक नलके चलने और हुक्केके गुडगुडानेकी आवाज़ आती रहती है। फिर .]

कर्मचद—(क्रोधसे) वस करो जगदीश ! क्या खट-खट लगा रखी है ? ज़रा आराम करने दो। अभी-अभी खाना खाकर वैठे है कि तुम . .

दादा—(हुक्केकी नलीको हटाकर उधर देखते हुए) नही नही, खेलने दो वच्चोको। (फिर हुक्का गुडगुडाते है) वच्चे (हँसते है)। वटकी पूरी डाल लाकर आँगनमे लगा दी और उसे पानी दे रहे है। . (हँसते है) नही जानते कि पेडसे टूटी डाली जल देनेसे नही पनपती। (हुक्का गुटगुटाते है, फिर नली छोडकर कर्मचन्दसे) मै कहा करता हूँ न वेटा कि एक वार वृक्षसे जो डाली टूट गयी, उसे लाख पानी दो, उसमे वह सरसता न आयेगी और हमारा यह परिवार वरगदके इस महान् पेडकी भाँति है

कर्मचन्द—लेकिन शायद अव इस पेडसे एक डाली टूटकर अलग हो जाय।

दादा—(चिन्तामे) क्या कहते हो ? कौन अलग हो रहा है ?

कर्मचन्द—शायद छोटा अलग हो जाय।

दादा — परेश ? पर क्यो, — उसे क्या कष्ट है ?

कर्मचन्द — कष्ट उसे तो नही; छोटी वहूको है।

दादा — मुझे किसीने वताया तक नही। यदि कोई शिकायत थी तो उसे वही मिटा देना चाहिये था। हलकी-सी खरौच भी, यदि उस पर तत्काल दवाई न लगा दी जाय, वढकर एक वडा घाव वन जाती है और वही घाव नासूर हो जाता है। फिर लाख मरहम लगाओ ठीक नही होता।

कर्मचन्द — मै अच्छी तरह तो नही जानता, पर जहाँ तक मेरा विचार है छोटी वहूके मनमे दर्पकी मात्रा जरूरतसे कुछ ज्यादा है। मैंने वह मलमलके थान और रजाईके अवरे लाकर दिये थे न ? और, सबने तो रख लिये, पर सुना है कि छोटी वहूको पसन्द नही आये। अपने मायकेके घरानेको शायद वह इस घरानेसे वडा समझती है और इस घरको घृणाकी दृष्टिसे देखती है।

दादा — वेटा, वडप्पन वाहरकी वस्तु नही — वडप्पन तो मनका होना चाहिए। और फिर वेटा, घृणाको घृणासे नही मिटाया जा सकता। वहू तभी पृथक् होना चाहेगी जव उसे घृणाके वदले घृणा दी जायगी। लेकिन यदि उसे घृणाके बदले स्नेह मिले तो उसकी समस्त घृणा धुँधली पडकर लुप्त हो जायगी। (हुक्का गुडगुडाते है) और महानता भी वेटा, किसीसे मनवायी नही जा सकती, अपने व्यवहारसे अनुभव करायी जा सकती है। ठूँठ वृक्ष आकाशको छूने पर अपनी महानताका सिक्का हमारे दिलो पर उस समय तक नही वैठा सकता, जव तक अपनी शाखाओमे वह ऐसे पत्ते नही लाता जिनकी शीतल सुखद छाया मनके समस्त तापको हर ले और जिसके फूलोकी भीनी भीनी सुगन्ध हमारे प्राणोमे पुलक भर दे।

भाषी — (वाहरसे) दादाजी, मल्लू और जगदीशने मेरा वटका पेड उखाड दिया (मल्लूसे लडते हुए चीख चीख कर) क्यो उखाडा तूने मेरा पेड — क्यो उखाडा . ?

दादा — पेड ? . . (हँसते है) . बच्चे ! ! (हँसते है) ठहरो, भाषी लडो मत वेटा। जाना कर्मचद, जरा हटाना इन दोनोको. .

(कर्मचन्द जाता है। दादा फिर हुक्केकी नली मुँहसे लगा लेते है — परेश नीची नजर किये प्रवेश करता है।)

दादा — आओ वेटा परेश, वह मैंने एक दो कपडे भेजे थे न, तनिक देखना वहूने उन्हे धो डाला है या नही। धो डाले हो तो ले आओ ज़रा। फिर तुमसे वात करूँगा।

परेश—मैं लज्जित . .

दादा—नही धुले तो फिर धुल जायँगे, बेटा। आओ इधर बैठो मेरे पास। मै तो तुम्हे बुलाने ही वाला था। आओ, आओ, इधर आकर बैठो।

(फिर हुक्का गुडगुडाने लगते है। परेश चुपचाप आकर दादाके पास बैठ जाता है।)

दादा—(हुक्का गुडगुडाना छोडकर) मुझे कर्मचन्दसे अभी पता चला है कि तुम्हारी बहूको रजाईके अबरे और मलमलका थान पसन्द नही आये। तुम्हारे ताऊ ठहरे पुराने समयके आदमी। वे नये फैशनकी चीजे खरीदना क्या जाने? जभी तो मै कहता हूँ कि छोटी बहूको बाजार ले जाओ। वह स्वय अपनी पसदकी चीजे ले आयेगी।

परेश—जी

दादा—(हुक्केका एक कश लगाकर) और मै सोचता था . . . (गुडगुडाते हैं) मैं जब अपने परिवारका ध्यान करता हूँ तो मेरे सामने वटका महान पेड घूम जाता है (खाँसकर) शाखाओ, पत्तो, फलो, फूलोसे भरा-पूरा (हुक्केके एक-दो कश लगाते है) और फिर मेरी आँखोके सामने इस महान वृक्षकी डालिया टूटने लगती हैं और वह केवल ठूँठ रह जाता है। (स्वर धीमा, जैसे अपने आपसे कह रहे हैं) और मै सिहर उठता हूँ। न बेटा, मै अपने जीते जी यह सब न होने दूँगा। तुम चिता न करो। मै सबको समझा दूँगा—घरमे किसीको तुम्हारी पत्नीका तिरस्कार करनेका साहस न होगा। कोई उसका समय नष्ट न करेगा। ईश्वरकी अपार कृपासे हमारे घर सुशिक्षित, सुसस्कृत बहू आयी है तो क्या हम अपनी मूर्खतासे उसे तग कर देगे? तुम जाओ बेटा, किसी प्रकारकी चिन्ताको मनमे स्थान न दो। मै कोई न कोई उपाय ढूँढ निकालूँगा। तुम विश्वास रखो वह अपने आपको परायोसे घिरी अनुभव न करेगी। उसे वही आदर-सत्कार मिलेगा जो उसे अपने घरमे प्राप्त था।

परेश—जैसा आप उचित समझे।

दादा—और देखो, तुम स्वय भी इस बातका ध्यान रखना। तुम्हारी किसी बातसे उसका मन न दुखे। कोई भी ऐसी बात न करो जिसे वह अपना अपमान समझे।

(परेश चलनेको होता है)

—और तुम उसे साथ ले जा कर नगरसे सब चीजे खरीद लाओ। शेषकी चिता तुम न करो, मै कोई न कोई रास्ता अवश्य निकाल लूंगा।

परेश—जैसी आपकी इच्छा।

[चला जाता है। दादा फिर हुक्का गुडगुडाने लगते है। हुक्केके कश लबे है जो इस बातके साक्षी है कि दादा हुक्का पीनेके साथ-साथ सोच भी रहे है।]

दादा—(जैसे अचानक उन्हे कुछ सूझ गया हो) रजवा . . . . रजवा . . (फिर हुक्का गुडगुडाते है, रजवा नही आती, फिर आवाज़ देते है) रजवा . . . रजवा . . .

रजवा—(दूरसे) जी आयी।

(भागती हुई-सी प्रवेश करती है)

दादा—छोटी बहूके अतिरिक्त सबको मेरे कमरेमे भेज दो। कहो कि सब काम छोडकर मेरे पास आये (रजवा जाने लगती है) और सुनो, कोई न रहे—सबसे कहना, कुछ क्षणके लिए अवश्य यहाँ आ जायँ।

रजवा—जी, मै अभी जाकर सबसे कह देती हूँ।

[चली जाती है। दादा फिर हुक्का गुडगुडाने लगते है। नलसे किसीके कपडे धोनेकी आवाज आने लगती है। दादा और भी लबे-लबे कश लेते है। धीरे धीरे कुटुम्बके प्राणी आने लगते है। बालक और युवक तख्त और चारपाइयो पर बैठते है और स्त्रियाँ बरामदेके फर्श पर। रजवा उनके बैठनेके लिए मोढे और चटाइयाँ लाकर बिछा देती है।]

दादा—(हुक्का पीना छोडकर) इन्दु कहाँ है, वह नही दीखती?

[फिर हुक्का गुडगुडाने लगते है और एक नजर सबको देखते है। रजवा स्नान-गृहको जानेवाले दरवाजेमे जाकर इन्दुको आवाज देती है। कपडे धोनेका स्वर जो इस बीचमे निरतर आता रहा है, सहसा बद हो जाता है।]

इन्दु—(बाहरसे) जी आयी (अन्दर आकर) मै नल पर थी, कपडे धोनेमे लगी थी।

दादा—(एक कश खीचकर) बैठो बेटा (एक-दो क्षण तक हुक्का गुडगुडाते है) मैने आज तुम सबको एक विशेष अभिप्रायसे बुलाया है। मुझे यह सुनकर बडा दुःख हुआ कि छोटी बहूका मन यहाँ नही लगा।

इन्दु—दादाजी . . .

दादा — इन्दु वेटा, मुझे अपनी वात कह लेने दो। मुझे यह जानकर वडा दु ख हुआ कि छोटी वहूका मन यहाँ नही लगा। दोप उसका नही, दोष हमारा है। वह एक वडे घरकी वेटी है, अत्यधिक पढी-लिखी है। सवसे आदर पाती और राज करती आयी हे। यहाँ वह केवल छोटी वहू है। यहाँ उसे हरएकका आदर करना पडता है, हरएकसे दवना पडता है, हरएकका आदेश मानना पडता हे — यहाँ उसका व्यक्तित्व दवकर रह गया है। मुझे यह वात पसद नही (कुछ क्षण हुक्का गुडगुडाते हे फिर —) वेटा, वडा वास्तवमे कोई उमरसे या दर्जेसे नही होता। वडा तो वुद्धिसे होता है, योग्यतासे होता है। छोटी वहू उम्रमे न सही अक्लमे हम सवसे निश्चय ही वडी है। हमे चाहिए कि उसकी वुद्धिसे, उसकी योग्यतासे लाभ उठाये। मेरी इच्छा है कि उसे यहाँ वही आदर-सत्कार मिले जो उसे अपने घरमे प्राप्त था। सव उसका कहना माने, उससे परामर्श ले और मै प्रसन्न हूँगा यदि उसका काम भी तुम लोग आपसमे वॉट लो और उसे पढने-लिखनेका अधिक अवसर दो। उसे अनुभव ही न हो कि वह किसी दूसरे घरमे, किसी दूसरे वातावरणमे आ गयी हे।

(फिर कुछ क्षण हुक्का गुडगुडाते हे, फिर)

— वेटा, यह कुटुम्व एक महान् वृक्ष है। हम सब इसकी डालियाँ हे। डालियो ही से पेड पेड है और डालियाँ छोटी हो, चाहे बडी, सब उसकी छायाको वढाती हे। मै नही चाहता, कोई डाली इससे टूटकर पृथक् हो जाय। तुम सदैव मेरा कहा मानते रहे हो। वस यही वात मै कहना चाहता हूँ यदि मैने सुन लिया — किसीने छोटी वहूका निरादर किया है, उसकी हँसी उडाई है या उसका समय नष्ट किया है तो इस घरसे मेरा नाता सदाके लिए टूट जायगा . अव तुम सव जा सकते हो।

(फिर हुक्का गुडगुडाते हे। सव धीरे धीरे जाने लगते हे।)

— इन्दु वेटा और मँझली वहू, तुम जरा वैठो।

(दोनोके अतिरिक्त शेष सव चले जाते हे।)

— मँझली वहू तुम अपनी हँसीको उन लोगो तक ही सीमित रखो वेटा, जो उसे सहन कर सकते हे। वाहरके लोगो पर घरमे वैठकर हँसा जा सकता है, किंतु घरके लोगोको तव तक हँसीका निशाना वनाना ठीक नही, जव तक वे पूर्णतया घरका अग न वन जायँ और इन्दु वेटा, तेरी छोटी भाभी वडी वुद्धिमती, सुशिक्षित और सुसस्कृत है, तुझे उसकी हँसी उडाने,

उससे लडने-झगडनेके वदले उसका आदर करना चाहिए, उससे ज्ञानार्जन करना चाहिए। तुम दोनोको मै इस विषयमे विशेष कर सावधान रहनेका आदेश करता हूँ।

(फिर हुक्का गुडगुडाने लगते है, फिर क्षणभर वाद)

—अव तुम जाओ और देखो फिर मुझे शिकायतका अवसर न मिले। (गला भर आता है।) यही मेरी आकाक्षा है कि सब डालियाँ साथ साथ वढे, फले-फूले, जीवनकी सुखद, शीतल वायुके परससे झूमे और सरसायें। विटपसे अलग होनेवाली डालीकी कल्पना ही मुझे सिहरा देती है।

(फिर हुक्का गुडगुडाने लगते है।)

इन्दु—हमे क्षमा कीजिए दादाजी, हमारी ओरसे आपको कभी शिकायतका अवसर न मिलेगा।

[दोनो चली जाती है। दादा कुछ देर हुक्का गुडगुडाते है। फिर वाहर खेलते हुए वच्चोको आवाज देते है।]

दादा—भाषी, मल्लू, जगदीश, आओ, आज तुम्हे एक कहानी सुनायें . वटके पेड और उसके वच्चोकी।

भाषी—(दरवाजेसे झाँककर) हम सुन चुके है। हम नही आते। हर वार वही कहानी . .

मल्लू—चाँद राजा, तारा राजाकी सुनाओ तो आये। हर वार यही कहानी (नकल उतारकर) एक था वटका पेड . . .

(हँसते हुए अदृश्य हो जाते है।)

दादा—(हँसते है) यही कहानी—यही कहानी तो कुटुम्बका, समाजका, राष्ट्रका निर्माण करती है। यही तो जीवनको सुदृढ, विशाल और महान् वनाती है।

(हुक्का गुडगुडाने लगते है—पर्दा गिरता है।)

तीसरा दृश्य

[वही वरामदा—दोनों तख्त पूर्ववत् खिडकियोके वरावर रखे हुए है और दो चारपाइयाँ वैसे ही दीवारके साथ लगी खडी है। हाँ, कुर्सी मध्यमे आ गयी है—ज्ञात होता है कि इस पर छोटी वहू—वेला—वैठी धूप ले रही थी—किन्तु पर्दा उठने पर वह आकुलतासे वरामदेमे घूमती

हुई दिखाई देती है—एक हाथमे पुस्तक है, मानो पढते-पढते कोई विचार आ जानेसे उठकर घूमने लगी हो।]

वेला—(अपने आपसे) मै किन लोगोमे आ गयी हूँ? ये कैसे लोग है कुछ भी तो समझ नही सकी . आज कुछ है कल कुछ . . . पलमे तोला पलमे माशा. इनका कुछ भी तो पता नही चलता।

(फिर सोचती हुई धीरे धीरे घूमती है।)

—गर्म होते है तो आग वन जाते है और नर्म होते है तो मोमसे भी कोमल दिखायी देते है। आज जिस वातको वुरा कहते है, कल उसीकी प्रशसा करते है—मै तो तग आ गयी इन लोगोसे।

[जाकर फिर कुर्सी पर वैठ जाती है और पुस्तक खोल लेती है। अन्दर गैलरीसे उसकी सास, छोटी भाभी आती है।]

छोटी भाभी—तुम ठीक कहती थी वेटी—इस रद्दी सामानसे बैठक वैठक नही, कवाडीका गोदाम दिखायी देती थी। सोचती थी कि यह सामान इतने दिनोसे इस कमरेमे पडा है, कुछ ऐसा वुरा भी नही और इस पर इतनी देरसे सव वैठते आ रहे है, कही दादाजी वुरा नही माने। पर अच्छा किया तुमने जो वह सव उठा दिया। मैने परेशसे कह दिया है—तुम उसके साथ जाकर अपनी रुचिका सामान खरीद लाओ। यह सव मै रजवासे कहकर सुरेशके कमरेमे भिजवा देती हूँ। कई वार निगोडी इन्ही कुर्सियोके लिए वह मुझसे रूठ चुका है।

वेला—आप वैठिए माँजी .

छोटी भाभी—वस तुम वैठो वेटी। मै तो यो ही तुम्हे इधर वैठे देखकर चली आयी। अनाज पडा है, उसे फटकना है; मिर्चे पडी है, उन्हे कूटना है, मक्खन कई दिनोका इकट्ठा हो गया है, उसका घी वनाना है, वीसो दूसरे काम है, और दिन ढल रहा है। मै सोचती थी, तुमने मेरी वातका वुरा न माना हो। वास्तवमे वेटी, रजवा मेरे पास आकर फूट-फूट कर रो दी। नौकरानी समझदार, विश्वसनीय और आज्ञाकारी है। किन्तु जो काम उसने कभी किया ही न हो, वह उससे किस प्रकार हो सकता है?

वेला—(उठती हुई) आप वैठिए तो. . .

छोटी भाभी — (उसके कधों पर हाथ रखकर उसे बैठाते हुए) बैठो-बैठो बेटी, कष्ट न करो। मैं तुम्हारा अधिक समय नष्ट न करूँगी। मैं तो केवल तुमसे उसकी सिफारिश करने आयी थी। भावुक स्त्री है, जल्दी ही बातका बुरा मान जाती हैं। तुम यों करना कि ज्यो ही नया फर्नीचर आ जाये, अपने सामने लगवाकर रजवाको एक बार झाडना-बुहारना सिखा देना। फिर वह गलती नही करेगी, न हो तो कभी मुझे बता देना। मैं उसे समझा दूंगी।

बेला — नही, नही, आप . .

सास — तुम पढी-लिखी समझदार हो बेटी, इसलिए तुमसे इतना कह दिया है। यो तुम न चाहो तो कोई दूसरा प्रबंध हो जायगा। तुम इस बातकी तनिक भी चिता न करो।

(चलनेको उद्यत होती है)

बेला — आप बैठिए तो सही . . .

सास — नही, नही, तुम अपने पढो। मैं वृथा तुम्हारा समय नष्ट न करूँगी।

(चली जाती है)

बेला — (पुस्तक बन्द करके लबी साँस लेती हुई जैसे अपने आप) इन लोगोकी कुछ भी तो समझमे नही आती। ये माँजी एकदम कैसे बदल गयी? अभी परसों मुझे इसी रजवाके लिए डॉट रही थी। इनका कुछ भी तो पता नही चलता।

(फिर पढने लगती है। बडी बहू और मँझली भाभी बाहरके दरवाजेसे प्रवेश करती हैं।)

मँझली भाभी — क्यो बेटी, अब रजवा कुछ काम सीख गयी है या नही? (जरा हँसती है) बुढिया है तो सयानी .

बडी बहू — आपने इन्दुसे ठीक ही कहा था। हमे वास्तवमे कामकी परख ही नही, पर अब .

बेला — आइए, इधर बैठिए, चारपाई सरका लीजिए।

मँझली भाभी — (वैसे ही खडे-खडे) मैंने एक अनुभवी नौकरानी खोज लानेके लिए कह दिया है जो नये फैशनके बडे घरोमे काम कर चुकी हो। वास्तवमे बहू, दादाजी पुराने नौकरोंके हकमे हैं — वे दयानतदार होते हैं और विश्वसनीय। हमारे पास पीढी-दर-पीढी काम करते आ रहे हैं। इस

रजवाकी सास भी यही काम करती थी, अब रजवाकी वहु भी यही काम करती है

वडी वहू — मैं कहती हूँ वहिनजी, आप रजवाकी बहूको ही अपने पास क्यो नही रख लेती   उसकी वयस भी कम है और काम भी वह जल्दी सीख जायगी।

वेला — (अन्यमनस्क-सी) नही, नये नौकरकी आवश्यकता नही। रजवा काम सीख जायगी, (कुछ चिढकर) पर आप खडी क्यो है?

मँझली भाभी — हम तुम्हारा हर्ज न करेगी . .

वेला — (और भी चिढकर) मेरा कुछ हर्ज नही होता।

वडी वहू — हम आपसे छोटी है, वर्गमे भी और वुद्धिमे भी . . .

वेला — (रुआँसी आवाजमे) आप मुझे क्यो काँटोमे घसीटती है . . . आप मेरे साथ क्यो परायोका-सा व्यवहार करती है . . .

(उठ खडी होती है)

वडी वहू — वैठिए-वैठिए, मँझली भाभी, आप भी बैठिए . . .

वेला — मै चलती हूँ . . .

(रुलाईको रोककर आँखो पर रूमाल रखे जल्दी जल्दी चली जाती है।)

मँझली भाभी — (जैसे अपने आपसे) परायोका-सा . .

[वाहरसे मँझली वहूके कहकहेकी आवाज आती है — दूसरे क्षण वह इन्दु और पारोके कन्धे पर झूलती हुई वाहरके दरवाजेसे आती है।]

इन्दु — सच . . .

मँझली वहू — (हँसी रोककर) और क्या मै झूठ कह रही हूँ। मैंने अपनी इन दो आँखोंसे देखा। (हँसती है) मलावीने सारीकी सारी छत फावडेसे खोद डाली और वसीलाल महाशय मुँह देखते रह गये।

(सव ठहाका मारकर हँस पडती है।)

वडी वहू — भाई मुझे भी वताना . . क्या किया मलावीने . . . सच।

[मँझली वहू चारपाई विछाकर उसमे धँस जाती है। उसकी एक ओर इन्दु और दूसरी ओर पारो वैठ जाती है। मँझली भाभी कुर्सी पर बैठती है और वडी वहू खडी रहती है।]

मँझली भाभी — (कुर्सीको जरा खिसकाकर समीप होते हुए) वसीलालके सामने उखाडकर फेक दी छत मलावीने?

मँझली वहू — मैं कहती हूँ, मुँह देखते रह गये वसीलाल महाशय, ताका किये मुटर-मुटर. . . .

(सब ठहाका लगाती है।)

वडी वहू — अरे कौन-सी छत खोद डाली यह तो वताओ. . .

मँझली वहू — रसोईकी और कौनसी। अभी दो घटे भी नही हुए कि राज-मजदूर छत डालकर गये थे और वसीलाल कारीगरो और मजदूरोंसे निपटकर अभी दूकानको गया था कि आ गयी उवरमे मलावी मारोमार करती। जाने किसने उसे जाकर वताया कि तुम्हारे देवरने अपनी रसोई पर छत डाल ली है। ले के फावडा वस सारीकी सारी छत उसने खोद डाली। वसीलाल तव पहुँचे जव अन्तिम कडी भी उखड चुकी थी। तव क्या करते — ताका किये मुटर-मुटर . .

(मँझली भाभीको छोडकर सब हँसती है।)

मँझली भाभी — पर वसीलालका लडका . .

मँझली वहू — गलीके सिरेपर खडा खम ठोंक रहा है।

(जघापर हाथ मारकर वताती है कि कैसे खम ठोक रहा है ।)

इन्दु — खम ठोक रहा है?

मँझली वहू — (कहकहा लगाती है) सच खम ठोक रहा है और हवा ही मे ललकार रहा है कि मै डयोढीकी छत खोद डालूंगा, मै मकानको खण्डहर बना दूंगा। मै यह करूँगा, मै वह करूँगा, और इधर मलावी कमर कसे खडी है कि आये जो माईका लाल है, रक्खे पाँव घरके भीतर . .

(सब हँसती है।)

इन्दु — (अँगुली ओठो पर रखकर) शश . श. . . श भाभी आ रही है।

[हँसी एकदम बन्द हो जाती है; सन्नाटा छा जाता है — बेला एक हाथमे बन्द किताब थामे धीरे-धीरे सीढियाँ उतरती है ।]

वेला — क्यो जीजी, आप चुप हो गयी (जरा हँसकर) किस बात पर कहकहे लगाये जा रहे है?

मँझली भाभी — (कुर्सीसे उठकर) यो ही हँस रही थी। आओ इधर कुर्सी पर वैठो।

वेला — नही-नही आप वैठिए। मै इधर तख्त पर बैठ जाती हूँ।

मँझली वहू — (जल्दीसे उठकर) आइए-आइए, आप इधर वैठिए।

इन्दु और पारो — (दोनों चारपाईसे उठ जाती है) आइए-आइए, आप इधर वैठिए।

[फिर नीरवता छा जाती है जिसमे एक प्रकारकी घुटन है। वेला वाहरकी ओर चल पडती है।]

इदु — वैठिए भाभीजी, आप चली क्यो?

वेला — (मुडकर क्लान्त तथा भारी स्वरमे) मै तो उधर ही जा रही थी। यों ही जाते-जाते खडी हो गयी। मै आपकी हँसीमे वाधा नही डालना चाहती। (खिन्न हँसीके साथ) आप हँसिए, कहकहे लगाइए।

(चुपचाप अहातेके दरवाजेसे निकल जाती है।)

मँझली वहू — मै कहती थी न कि इस ओर न आओ? मेरी मुई आदत हुई हँसनेकी।

इदु — अव एक यही स्थान था वैठनेको

मँझली वहू — हम हँसती है तो हँसती है दिलसे और छोटी वहूके अध्ययनमे वाधा पडती है। मै कहती हूँ, दादाजीको यदि पता चल गया कि हमारे यहाँ वैठनेसे छोटी वहूके पढनेमे खलल आता है तो वे. .

इदु — किंतु यही एक जगह थी पर्देवाली .

मँझली वहू — तुम भूल गयी, हमे ही तो दादाजीने खास तौर पर सतर्क रहनेको कहा था। (कहकहा लगाकर हँस पडती है) मै कहती हूँ, चलो मेरे कमरेमे।

इन्दु — मुझे तो दादाजीके कपडे धोने है, मै चली।

(जल्दी-जल्दी वाहरकी ओर चली जाती है।)

मँझली भाभी — ठीक है। तुव लोग अव यहाँ इतना न वैठा करो। (वडी वहूसे) हम तो वहू गोदाममे जा रही थी, चलो गेहूँ छँटवा ले। छोटी वहन तो कवकी गई हुई है। फिर तो अस्त हो जायगा दिन, और महरियाँ चली जायँगी।

वडी वहू — मै तो फँस गयी मँझलीकी वातोमे . . . चलो . . . चलो।

(दोनों चली जाती है।)

मँझली वहू — मै कहती हूँ पारो, चल मेरे कमरेमे। वहाँ चल कर वैठ।

पारो—मुझे तो जाना है भाभी। लल्ला आ गया होगा, न मिली तो चिल्लायेगा।

मँझली बहू—(अपने आपमे) यह छोटी बहू तो उकाब-सी आकर सबको डरा गयी!

[हँसती है। बाहरसे बडी भाभी आती हुई दिखाई देती है, भाग कर उसके पास जाती है।]

—बडी भाभी, सुनी तुमने मलावीकी बात, खोद डाली उसने सारीकी सारी छत।

(कहकहा लगाती है)

बडी भाभी—मलावीने छत खोद डाली..

मँझली बहू—(उसे अपने साथ लेकर कमरेकी ओर जाती हुई) हाँ, हाँ, अभी राज-मजदूर छत बना कर गये थे कि आ गयी मलावी मारो-मार करती...

बडी भाभी—पर ....

मँझली बहू—चलो मेरे कमरेमे। वहाँ चलकर सब बताती हूँ। यहाँ तो छोटी बहूकी पढाईमे बाधा पडती है।

[उसे साथ लेकर अपने कमरेकी ओर जाती है। बाहरसे परेश और बेला बाते करते प्रवेश करते है।]

बेला—(आर्द्र कठसे) आप मुझे मेरे मायके भेज दीजिये। मुझे ऐसा लगता है जैसे मै अपरिचितोमे आ गयी हूँ। कोई मुझे नही समझता, किसीको मै नही समझती।

परेश—आखिर बात क्या है? कुछ कहो भी?

बेला—मै जाती हूँ तो सब खडी हो जाती है। बडी भाभी, मँझली भाभी और माँजी तक मेरे सामने कोई हँसता नही, कोई मुझसे अधिक समय तक बात नही करना चाहता। सब मुझसे ऐसे डरती है जैसे मुर्गीके बच्चे बाजसे। अभी अभी सब हँस रही थी, ठहाके पर ठहाके मार रही थी, मै गयी तो सब ऐसे सन्न रह गयी जैसे भरी सभामे किसीने चुपकी सीटी बजा दी हो।

परेश—पर इसमे ..

बेला — और कोई मुझे कामको हाथ लगाने नही देता। तनिक-सा भी काम करने लगूँ तो सब भागी आती हैं। सब मेरा इस प्रकार आदर करती हैं, मानो मैं ही इस घरमे सबसे बडी हूँ।

परेश — मैं नही समझता तुम क्या चाहती हो? तुम्हे शिकायत थी, कोई तुम्हारा आदर नही करता, अब सब तुम्हारा आदर करते हैं। तुम्हे शिकायत थी कि तुम्हे सबसे दबना पडता है, अब सब तुमसे दबते हैं। तुम्हें शिकायत थी कि तुम सबका काम करती हो, अब सब तुम्हारा काम करते हैं। आदर, सत्कार, आराम — न जाने तुम और क्या चाहती हो।

(तेजीसे सीढियाँ चढ जाता है।)

बेला — (निढाल होकर कुर्सीमे धँस जाती है) न जाने मैं क्या चाहती हूँ। (सिसकने लगती है) न जाने मैं क्या चाहती हूँ, पर मैं इतना जानती हूँ कि मैं यह सब आदर, सत्कार, सुख, आराम नही चाहती।

(बाहोमे मुँह छिपाकर सिसकती है। इन्दु हाथमे कुछ मैले कपड़े लिए हुए बाहरके दरवाजेसे प्रवेश करती है।)

इन्दु — भाभीजी . .

बेला — (उसी प्रकार चुप बैठी रहती है।)

इन्दु — (बेलाके कधेको हिलाकर) भाभीजी भाभीजी . . . .

(बेला मुँह ऊपर उठाती है।)

इन्दु — हैं, भाभीजी, आप तो रो रही हैं?

बेला — (आँखे पोंछकर) नही मैं रो नही रही, पर इन्दु परमात्माके लिए मुझे 'जी' 'जी' करके न बुलाया करो।

इन्दु — लो भला यह कैसे हो सकता है। आप मुझसे बडी हैं और फिर आप मुझसे कही अधिक पढी-लिखी हैं।

बेला — पहले तो तू मुझे यों भी 'जी' 'जी' करके नही बुलाया करती थी?

इन्दु — मैं तो मूर्ख ठहरी भाभीजी! दादाजीने कहा था . . .

बेला — (सहसा चौंककर) दादाजीने क्या कहा था?

इन्दु — उन्होंने सबको समझाया था कि घरमे सबको आपका आदर करना चाहिए।

वेला—किंतु उन्होने यह सव क्यों कहा? मैने तो कभी उनसे इस वातकी शिकायत नही की।

इन्दु—शायद छोटे भैयाने उनसे यह कहा था कि आपका जी यहाँ नही लगता। आप वागवाले

वेला—ओह! यह वात है।

इन्दु—दादाजी और सव कुछ सह सकते है, किसीका पृथक् होना नही सह सकते—'हम सव एक महान् पेडकी डालियाँ है' वे कहा करते है, 'और इससे पहले कि कोई डाली टूटकर अलग हो, मै ही इस घरसे अलग हो जाऊँगा' और उन्होंने हम सवको समझाया कि हम आपका आदर करें, काम करे और आपको पढने पढानेका समय दें।

वेला—पर मै तो आदर नही चाहती और मै तो तुम सवके साथ मिलकर काम करना चाहती हूँ।

इन्दु—यह कैसे हो सकता है भाभीजी . .

वेला—(दीर्घ निश्वास छोड़ती हुई) आप लोगोने मुझे कितना गलत समझा और मैने आप लोगोंको कितना . . .

इन्दु—आप कैसी वाते करती है। लाइए, कपड़े लाइए। मै दादाजीके कपडे धोने जा रही हूँ, साथ ही आपके भी फटक लाऊँ।

वेला—(चुप सोचती है)

इन्दु—भाभीजी . . .

वेला—(जैसे मन-ही-मन उसने किसी वातका निश्चय कर लिया हो) मै भी तुम्हारे साथ जाऊँगी, मै भी तुम्हारे साथ कपडे धोऊँगी।

इन्दु—दादाजी नाराज न होंगे . .

वेला—मै दादाजीसे कह दूँगी।

इन्दु—भाभीजी . . . .

वेला—मुझे केवल भाभी कहा कर, मेरी प्यारी इन्दु!

इन्दु (प्यारसे भरे हुए गलेके साथ) भाभी . .

वेला—चल कपडे धोएँ। धूप निकली जा रही है!

इन्दु—पर कपडे . . .

वेला—मेरे कपडे आज रजवाने धो दिये थे, सलवार कमीज ही तो थी। चल मै तेरी सहायता करूँगी।

[दोनो चली जाती हैं, कुछ क्षणके वाद वरामदेमे कपडे धोनेका शब्द आने लगता है। दादा गैलरीकी ओरसे हुक्का गुडगुडाते गुडगुडाते मल्लूकी अँगुली थामे प्रवेश करते हैं।]

दादा—हाँ, वेटा तुम्हे मेलेमे ले चलेगे। जो तू कहेगा, वही खिलौना ले देगे।

मल्लू—मै तो उडन खटोला लूंगा।

(सहसा वाहरके दरवाजेसे पास जाकर ठिठक जाते है।)

दादा—(आश्चर्यसे) है! छोटी वहू

इन्दु—(वाहरसे) मैने तो वहुतेरा कहा पर भाभी मानी नही।

दादा—छोटी वहू, इधर आ वेटी!

(शरमाई हुई वेला दरवाजेके पास आ खडी होती है।)

वेटा! कपडे धोना तुम्हारा काम नही! पढ-लिखकर . .

इन्दु—(जो अपनी भाभीके साथ ही आ खडी हुई है) मैने बहुतेरा कहा पर भाभी मानी

दादा—(जिन्हे इन्दुके स्वरका अनादर अच्छा नही लगा) इन्दु, तुझे कितनी वार कहा है कि आदरसे .

वेला—(भावावेगके कारण रुँधे हुए कठसे) दादाजी, आप पेड़से किसी डालीका टूटकर अलग होना पसन्द नही करते, पर क्या आप यह चाहेगे कि पेडमे लगी-लगी वह डाल सूखकर मुरझा जाय? . .

(सिसक उठती है, हुक्केकी गुडगुडाहट एकदम वन्द हो जाती है।)

(पर्दा सहसा गिर पडता है।)

कठिन शब्दोंके अर्थ

१

बुद्धि बनाम श्रद्धा

नास्तित्व — अस्तित्व न होना
अवलंबित — टिकी हुई, आधारित
अनुभूत — अनुभवसे प्राप्त
जडरूप — गतिहीन, निश्चेष्ट
परास्त करना — हराना
पराजय — हार
विवाद — तर्क
अन्धानुकरण — बिना सोचे समझे नकल करना
पराकाष्ठा — हद

२

तूफान और कसौटी

लिबास — पोशाक
मुवक्किल — वह जो किसीको अपना वकील बनावे।
सूतक(क्वारटीन)–विशेष अवधि जिसमे जहाजको संक्रामक बीमारियोंके डरसे बंदरगाह पर रोक रखते हैं।
तजवीज़ — उपाय
प्रतिपक्षी — विरोधी पक्षवाला
शरीक — शामिल
आशय — अभिप्राय

३

हर्षवर्धन और ह्यूएनत्सांग

धर्मपरायण— धार्मिक आचार विचार-वाला
कबाडखाना — विभिन्न प्रकारकी चीजोंका संग्रह
सुकुमारता — कोमलता
भाव व्यंजकता — भावोंकी अभिव्यक्ति, प्रकटीकरण
कमनीयता — सुन्दरता
बागी — विद्रोही
लंघन — उपवास
मार्केकी बात – ध्यान देने योग्य बात
सल्तनत — राज्य
विहार — बौद्ध भिक्षुओंके रहनेकी जगह, मठ

४

सुखकी राह

फरोशी — विक्रय, बेचनेकी क्रिया
हलवा-माँडा — स्वादिष्ट खाना
ठीकरा — टूटा फूटा बरतन या मिट्टीका पात्र
दरिन्दा — हिंसक पशु
जमीर — मन, विवेक, ज्ञान
हुक्मबरदारी — आज्ञापालन
बुत — मूर्ति
नबी — पैगम्बर
बुतशिकन — मूर्तिभंजक
बुज़दिली-शिकन — कायरता नष्ट करनेवाला
संगे असवद — काबेमे लगा हुआ एक काला पत्थर जिसे नबीने चूमा था।

तवाफ — प्रदक्षिणा, परिक्रमा
तैनात — नियत, मुकर्रर
धेवता — लडकीका लडका
रान — जांघ
मौतकिद — आस्तिक
तरका — वह जायदाद जो किसी आदमीके मरे बाद उसके वारिस को मिले।
हैसियत — हालत
नुक्स निकालना — भूल पकडना
मार्केकी बात — ध्यान देने योग्य बात
एतकाद — पक्का विश्वास
नसीहत — उपदेश

५

लोभ

अहकारी — घमडी
कदापि — कभी, किसी समय भी
कगाल — दरिद्र
धीरता — मनकी दृढता, सतोष
लिहाफ — रजाई
धनाढ्य — सपन्न, मालदार
भस्मक — पेटका एक रोग जिसमे भोजन तुरत पच जाता है।
बहुधा — अधिकतर
सतरी — सिपाही
रखवाली — देखरेख, रक्षा
सधनता — सपन्नता
तवगरी — अमीरी

६

मशीनकी मुसीबत

फलां — अमुक
तकाजा — तगादा, ऐसी चीज मांगना जिनके पानेका अधिकार हो
रसाई — पहुँच
बेतकल्लुफ — जिसे शिष्टाचारका ध्यान न हो
हरगिज — कदापि
टुकर टुकर ताकना — ललचाई नजरोंसे प्रतीक्षा करना
अजीज — प्यारा
पसोपेश — असमजस, सोचविचार
एहतियात — सँभाल, हिफाज़त
सहीसलामत — सुरक्षित
रमजान शरीफ — एक अरबी महीना जिसमे मुसलमान रोज़ा रखते हैं।
फरमाया — हुक्म दिया
सिवइयाँ — गुँधे हुए आटेके सूत-से सूखे लच्छे जो पानीमे या दूधमें पकाकर खाये जाते है।
कट्रोल . कीजिये — कट्रोलको आशीर्वाद दीजिये।
मायूस — उदास
मुबारकदिन — शुभ दिन
बजा है — उचित है
घर घरकी धूल फाँकना — दर दर भटकना
कुलावे — जोड
किफायतसे — कम खर्च करने पर
गरक होना — डूबना
तस्लीमात अर्ज — प्रणाम
पटरा — लकडीका तख्ता
अैंडी बैंडी — खोटी-खरी
दीदार होना — दर्शन होना
बाज आना — छोड देना
हजार मतरबा — हजार बार

फरिश्ता सिफ्त — नेक गुणवाला
जगे अज़ीम — बड़ी लड़ाई
दरख्वास्त — प्रार्थना
बमुश्किल — कठिनाईसे
अखरना — खटकना
रोज़ा अफ्तारना — रोजा खोलना
आनन फाननमे — फौरन
बेमुरौवती — बेलिहाजी, अशिष्टता
खैरात — दान
इजारा — ठेका
अजाब — मुसीबत
मुर्दनी — उदासी, सुस्ती
इल्लत — आफत
जबाँदराज़ — वाचाल
हरामजादा — अकुलीन
गिरगिट — रग बदलनेवाला छिपकली की तरहका एक जन्तु
गैरत — शर्म
ऐसी की तैसी — एक गाली
तूल देना — बढाना
तीन हरफ — लानत

७

जीवनमें साहित्यका स्थान

अटारी — घरके ऊपरकी कोठरी या छत
गुम्बद — गोल और ऊँची छत
बुनियाद — नीव
वीभत्स — घृणाका भाव, नौ रसोमेसे एक रस
पराकाष्ठा — चरम सीमा, हद
कृत्रिम — बनावटी
आडबर — तडक-भडक, ढोग
जिज्ञासा — जाननेकी बलवती इच्छा
प्रयोजन — उपयोग, व्यवहार
सामजस्य — एकरसता, मेल-जोल
बाधक — रोकनेवाली
तौरीत — यहूदियोकी धर्म-पुस्तक
कुरान — मुसलमानोंकी धर्म पुस्तक
इञ्जील — ईसाइयोकी धर्म-पुस्तक
धर्म-प्रवर्तक — नए धर्मको शुरू करनेवाले
विचलित होना — डगमगाना
विचर सके — घूम-फिर सके
हारमनी — समरसता
विस्मय — आश्चर्य
अधिकृत — अधिकार किये हुए
कतलाम — कत्लेआम, सर्व साधारणका वध
झाऊँ — एक प्रकारका छोटा झाड
भगुर — नाशवान, टूटी फूटी
वशीभूत — वशमे
उत्सर्ग — बलिदान
कृतकार्य — धन्य
दायित्व — जिम्मेदारी
खुदाई फौजदार — परमात्माके कामोमे हस्तक्षेप करनेवाला
शर — बाण
साहित्यसेवी — साहित्यिक

८

प्रेमचन्दजीकी कला

वक्तव्य — कहने योग्य
सर्वभक्षी निगाह — सर्वांगीण दृष्टि
दशाब्दि — दस वर्षका समय
क्षमता — शक्ति

पैठकर — घुसकर
चुस्ती — कसावट, मजबूती
सामंजस्य — मेल, एकरसता
सुजडित — अच्छी तरह जडे हुए
अप्रत्यक्ष — परोक्ष, जो नजरके सामने न हो
घात–प्रतिघात — क्रिया-प्रतिक्रिया
तद्‌गत — उससे सबध रखनेवाला
औचित्य — अुचितका भाव
अवश्यम्भावी — अटल, जो अवश्य हो
मार्मिक स्थल — हृदय पर प्रभाव डालनेवाले अग
उद्‌बुद्ध — समझदार
जरा — बुढापा
अन्तरतर — गहन
तुष्टि — तृप्ति
अहम् समर्थन — खुदीकी तारीफ
अतर्क्य — तर्क-मुक्त
परिधि — घेरा, हद
फाँदना — कूदना
अखिलव्यापी — सारे ससारमे व्याप्त
चिरस्थायी — टिकाऊ
द्वद्व — दो चीजोंके बीच होनेवाली उथल-पुथल, झगडा
कलुषित — काला
कुत्सित — जिसे देखकर घृणा हो
अक्षुण्ण — बिना टूटा हुआ, समूचा
उत्सर्ग-तत्पर — बलिदानके लिए तैयार
अनुप्राणित — जिसमे प्राण या जीवनी शक्ति भरी हो

९

मृत्युका काव्य

भव्य — ऊँचे दर्जेके, सुन्दर
वृत्ति — स्वभाव
शिखर — चोटी
निर्वाण — मोक्ष
आकाक्षा — चाह, इच्छा
आसक्ति — मोह
तह — पेदा, तल
प्रज्वलित करना — जलाना
धूलि धूसरित — धूलमे सना
जगत्‌जननी — ससारकी माता
आँकना — निश्चित करना
रुदन — विलाप, रोना
कृतार्थ — धन्य
समाधान — सदेह या विरोधका अत
पर्व — पुण्य कार्य करनेका सुअवसर
विषमय वैषम्य — जहरीली विषमता, भेदभाव

१०

सत्याग्रह और सर्वोदय

जेब करना — (जिबह) गला काटकर प्राण लेनेकी क्रिया, हिंसा
तिजारत — व्यापार
गौण — अप्रधान
आदिम — पहलेका, पुराना
पहलू — अग
पाबद — बँधा हुआ
बीज शुद्धि — वश परपराको वर्णसकर होनेसे बचाकर शुद्ध रखना
आस्तिकता — विश्वास

सर्वं समाप्नोपि ततोऽसि सर्व. —आप सबको अपने भीतर समा लेते हैं इसलिए आप सर्व हैं।
धर्मगोप्ता —धर्मका रक्षक

११

मिलन-मुहूर्त

तिरस्कार —निरादर
प्रतिमा —मूर्ति
भुवनमोहिनी —संसारको मोहित करनेवाली
रूपराशि —सौंदर्यका भंडार
सुषुमापूर्ण —सुन्दरतासे भरपूर
मलय सुरभि —मलय पर्वतसे आनेवाली शीतल मंद सुगन्ध पवन
श्रमण—बौद्ध भिक्षुक
सुविशाल अट्टालिका —बड़ी ऊँची इमारत
राजेश्वर —राजाओंका स्वामी
भासमान —आलोकित, प्रकाशित
काषाय वस्त्र —गेरुआ वस्त्र
कौशेय —रेशमी
कबरी —स्त्रियोंकी चोटी
ग्रथित —बँधी हुई
रिक्त —खाली
आलिंगन —गले लगानेकी क्रिया
सदन —घर
शारदीय शुभ्राकाश —शरद् ऋतुका स्वच्छ आकाश
प्राची —पूर्व दिशा
उदयोन्मुख —उगनेके लिए तैयार
रूपोज्ज्वल —उज्ज्वल रूपकी
कलकलस्वरता — कलकल ध्वनि करनेमें लगी हुई।
हिंस्रपशु —खूनी जानवर
वक्ष विदीर्णकर —हृदय चीरकर
धराशायी कर दिया —जमीन पर गिरा दिया
गीतसुधाकी वृष्टि — संगीतकी अमृत वर्षा
मुक्तकुंतला —जिसके बाल खुले हुए हों
प्रत्यंचा —धनुषकी डोरी
ध्येय धर्म —लक्ष्य
मृतप्राय —मरे हुए के समान
शरद्, शिशिर, हेमन्त —सर्दीकी ऋतुके तीन नाम
पाथनिवास —सराय, राहगीरोंका निवासस्थान
प्रतिफलित —प्रतिबिंबित
विलास कक्ष —रंगमहल
पिशाचिनी —राक्षसी
छलनामयी —धोखेबाज
अमिताभ —भगवान बुद्धका एक नाम
गवाक्ष द्वार —झरोखेका दरवाजा
हतभागिनी —अभागी
मृणालकर — कमलनालके समान कोमल हाथ
भीषण —भयंकर
घातक —मारनेवाला, वधिक
कुत्सित —खराब
राजपथ —मुख्य रास्ता
क्षत —घाव
पीब —मवाद, पस
रुदन —रोना

उपहास — हँसी
सुरभिसे सौरभवती — सुगन्धसे सुगन्धित
सुधा — अमृत
प्रस्तर खड — शिला, पत्थरका टुकडा
अबोध — नादान
निस्सार — व्यर्थ
अतुल ऐश्वर्य — अत्यधिक धन दौलत
यातना — पीडा,
सताप — दु ख
भगवान बोधिसत्व — बुद्ध
मरु ससार — सूखा ससार
क्षणभगुरता — अनित्यता
प्रस्तुत — तैयार, उपस्थित
विदग्धा — जलती हुई
सुरसरी — गगा
प्रव्रज्या — वैराग्य व्रत

१२

कुरान

लफ्ज़ी मानी — शब्दार्थ
एलान करना — घोषणा करना
रिवाजी मानी — प्रचलित अर्थ
कबीला — समूह, गिरोह
पेशा — व्यभिचार
पाक — पवित्र
मेहमाननवाजी — अतिथिसत्कार
तरतीब — क्रम
सूरे — अध्याय
खुदमुख्तार — स्वाधीन
तालीम — शिक्षा
उसूल — सिद्धात
रसूल या पैगम्बर — देवदूत

नेक रुझान — सद्वृत्तियाँ
रूहानी — आत्मा-सबधी

१३

निर्भयता

नाबूद करना — जड-मूलसे नष्ट करना
बरी — मुक्त
मस्तूल — नावके बीचका शहतीर जिस पर पाल बाँधते हैं।
आदी — अभ्यस्त
दरअसल — वास्तवमे
अलकाब — ('लकब'का बहुवचन) उपाधियाँ
जोखिम — खतरा
नैसर्गिक — प्राकृतिक
इत्तिफाक — सयोग
परवरिश — पालन-पोषण
धात्री — धाय
गश्त लगाना—निगरानीके लिए चक्कर काटना
बाज दफा — कभी कभी
बटोरना — इकट्ठा करना
मसलन — उदाहरण के तौर पर
उपयुक्त — ठीक, अच्छा
सोहबत — सगत
अन्देशा — डर
अकस्मात् — अचानक
सासर्गिक — ससर्गसे उत्पन्न

१४

कृष्ण-भक्तिका रोग

तेज तर्रार — चालाक
अख्तियार — अधिकार

तैनात — मुकर्रर
यथेच्छ — इच्छाके अनुकूल, मनमाने ढगसे
भुथरी — कुठित
स्थितप्रज्ञ—जिसकी विवेक-वुद्धि स्थिर हो, जो विकारोसे रहित हो
क्षणार्ध — आधा क्षण

१५

सूखी डाली

अराजकता — अशाति
आच्छादित — छाये हुए, ढँके हुए
अगणित — जिन्हे न गिना जा सके, अत्यधिक
रसूख — मेलजोल
सरकारी हलका — सरकारी मडल
नायब तहसीलदार — सहायक तहसीलदार
पोतोहू — पतोहू, पोतेकी पत्नी
मुरब्बा — जमीनकी नाप
अपेक्षाकृत निस्तब्धता — होनी चाहिए उससे अधिक शाति
बिफरी हुई-सी — गुस्सेमे भरी हुई
मिश्रानी — खाना बनानेवाली, नौकरानी
स्तम्भित — चकित
झाडन — सफाई करनेका कपडा
सलीका — ढग, तमीज
तुनककर — तैशमे आकर, नाराज होकर
फूहड — मूर्ख
गुसलखाना — नहाने धोनेका कमरा
अभियुक्त — मुलजिम, गुनाहगार
बरामदा — कमरेके बाहरकी खुली जगह
दर्प — घमड
अबरे — गिलाफ, गद्दे या तकिये पर चढाया जानेवाला कपडा
पृथक् — अलग
लुप्त — गायब
ताऊ — पिताके बडे भाई
कश — हुक्केका दम
अभिप्राय — मतलब
परामर्श — सलाह
परस — स्पर्श
सरसाये — हरे भरे हो
निगोडी — एक गाली
हकमे — पक्षमे
वयस — उम्र, आयु
अन्यमनस्क — उदास
ठहाका लगाना — जोरसे हँसना
खम ठोकना — पहलवानोकी तरह जाँघ पर थप्पी मारना
मुई — औरतोकी एक गाली
खलल — बाधा
कहकहा लगाना — जोरसे हँसना
उकाब — गिद्ध
बाज — एक शिकारी पक्षी
निढाल — शिथिल
